ऋग्वेद यजुर्वेद

ओ३म्

पवमान

(मासिक)

वर्ष : 26 भाद्रपद-आश्विन् वि0स0 2071 सितम्बर 2014 अंक : 09

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, नालापानी, देहरादून-248008

सामवेद अथर्ववेद

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन

नालापानी, देहरादून - 248008, दूरभाष: 0135-2787001

का शरदुत्सव (यजुर्वेद यज्ञ एवं योग साधना शिविर)
आश्विन शुक्ल पक्ष पूर्णिमा से कार्तिक कृष्ण पक्ष चतुर्थी विक्रमी सम्वत् 2071 तक
तदनुसार बुधवार 8 अक्टूबर से रविवार 12 अक्टूबर, 2014 तक मनाया जायेगा

यज्ञ के ब्रह्मा एवं योग साधना निदेशक : स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती जी महाराज

प्रवचनकर्ता	:	डॉ. नन्दिता चतुर्वेदा एवं आचार्य आशीष जी दर्शनाचार्य
वेद पाठ	:	पाणिनीय कन्या महाविद्यालय वाराणसी की ब्रह्मचारिणियों द्वारा।
यज्ञ के संयोजक	:	श्री उत्तम मुनिः जी।
भजनोपदेशक	:	श्री सत्यपाल पथिक जी (अमृतसर)

बुद्धवार 8 अक्टूबर से रविवार 12 अक्टूबर, 2014 तक प्रतिदिन

योग साधना	:	प्रातः 5.00 बजे से 6.00 बजे तक
यज्ञ	:	प्रातः 6.30 बजे से 8.15 बजे तक
भजन एवं प्रवचन	:	प्रातः 8.15 बजे से 9.30 बजे तक
यज्ञ	:	सायं 3.30 बजे से 5.15 तक
भजन एवं प्रवचन	:	सायं 5.15 बजे से 6.30 तक
भजन एवं प्रवचन	:	रात्रि 8.30 बजे से 9.30 तक

ध्वजारोहण	:	बुद्धवार 8 अक्टूबर 2014 को प्रातः 9.30 बजे।
गायत्री यज्ञ	:	बुद्धवार 8 अक्टूबर 2014 को प्रातः 10 से 12 बजे तक
महिला सम्मेलन	:	गुरुवार 9 अक्टूबर 2014 को मध्याहनोत्तर 12 बजे से 3 बजे तक
विषय	:	नारी स्वर्ग का द्वार है या नरक का?
संयोजिका	:	श्रीमती संतोष रहेजा जी (दिल्ली)
उद्बोधन	:	डॉ॰ अन्नपूर्णा जी, डॉ॰ सुखदा सोलंकी जी, डॉ. नन्दिता चतुर्वेदा जी, डॉ. मंजु नारंग जी, श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी एवं श्रीमती सरोज आर्या जी
शोभायात्रा	:	शुक्रवार 10 अक्टूबर 2014 को तपोभूमि के लिए शोभायात्रा जायेगी
संयोजक	:	श्री मंजीत सिंह जी
युवा सम्मेलन	:	शनिवार 11 अक्टूबर को प्रातः 10:30 से 12:30 बजे तक
विषय	:	क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है?
उद्बोधन	:	आचार्य आशीष जी दर्शनाचार्य एवं आचार्य डॉ. धनंजय जी
भजन संध्या	:	शनिवार 11 अक्टूबर 2014 को रात्रि 8 बजे से 10 बजे तक
पूर्णाहुति एवं ऋषिलंगर	:	रविवार 12 अक्टूबर 2014 को यज्ञ की पूर्णाहुति, भजन, प्रवचन एवं ऋषिलंगर

बस सेवा: रेलवे स्टेशन से तपोवन आश्रम नालापानी के लिए हर समय बस उपलब्ध रहती है।

सप्रेम आमंत्रण

आदरणीय महोदय/महोदया, स्व. बाबा गुरुमुख सिंह जी एवं पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी, स्वामी योगेश्वरानन्द जी परमहंस एवं महात्मा प्रभु आश्रित जी ने तपोवन आश्रम को साधना के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान माना था। आपसे प्रार्थना है कि परिवार व ईष्ट मित्रों सहित यज्ञ एवं सत्संग में उपस्थित होकर हमें कृतार्थ करें एवं अपने-अपने समाज/धार्मिक सत्संगों से यह निमंत्रण हमारी ओर से निवेदित करने की कृपा करें। आपके उदार सहयोग के लिए अग्रिम धन्यवाद।

निवेदक

दर्शन कुमार अग्निहोत्री, ई. प्रेम प्रकाश शर्मा, सन्तोष रहेजा, सुधीर कुमार माटा, मंजीत सिंह, विक्रम बावा, योगेश मुंजाल, डॉ. शशि वर्मा, मनीष बावा, महेन्द्र सिंह चौहान, गोपाल कृष्ण हांडा, विजय कुमार, रामभज मदान

एवं समस्त सदस्य, वैदिक साधन आश्रम सोसायटी

ओ३म्

पवमान

वर्ष-26 अंक-09
भाद्रपद-अश्विन 2070-71 सितम्बर 2014
सृष्टि सम्वत-1,96,08,53,115 दयानन्दाब्द-190

❖
-:संरक्षक:-
स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती
❖
-:आद्य सम्पादक:-
स्व० श्री देवदत्त बाली
❖
-:सम्पादक:-
कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री
मो. : 09336225967
❖
-: अध्यक्ष :-
श्री दर्शनकुमार अग्निहोत्री
मो. : 09810033799
❖
-:सचिव:-
प्रेम प्रकाश शर्मा
मो. : 9412051586
❖
-:सम्पादक मण्डल:-
कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री
आचार्य आशीष दर्शनाचार्य
मनमोहन कुमार आर्य
पं. उम्मेद सिंह विशारद
❖

-:कार्यालय:-
वैदिक साधन आश्रम, तपोवन,
तपोवन मार्ग, देहरादून-248008
दूरभाष : 0135-2787001
Email : vaidicsadanashram88@gmail.com
Web-www.vaidicsadhanashramdehradun

विषयानुक्रम

सम्पादकीय	कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री	2
वेदामृत	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	3
सूक्ष्म शरीर को जगाओ	म० प्रभु आश्रित महाराज	4
पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय	मनमोहन कुमार आर्य	7
हृदय की पुकार	म० आनन्द स्वामी	11
जीवन के प्रति आध्यात्मिक......	कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री	14
भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता	श्री रवीन्द्र कुमार शास्त्री	16
एक सिद्धान्त वेद ईश्वरी ज्ञान है	स्व० आचार्य प्रियव्रत	19
सदाचार महिमा	स्व० यशपाल आर्यबन्धु	20
कोटि तुम्हारा हो वन्दन	श्री राधेश्याम आर्य	22
ईश्वर कैसे प्राप्त हो ?	स्वामी धर्ममुनि परिव्राजक	23
वैदिक गृहस्थ आश्रम	स्व० रामप्रसाद वेदालंकार	25
राष्ट्र भक्ति की पराकाष्ठा, माँ का रूप		27
वैदिक साधन आश्रम............	ई० प्रेम प्रकाश शर्मा	28
आजमाएं तो जीवन स्वर्ग	डॉ० अजीत मेहता	30
सामान्य रोगों के सुगम इलाज		32

शुल्क: वार्षिक: रु150 : एक प्रति मूल्य : रु15 : पन्द्रह वर्ष हेतु : रु1500

पवमान में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र देहरादून ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

सम्पादकीय

पवमान शब्द पूङ् पवने धातु से शानन् प्रत्यय से बनता है जिसका अर्थ है -पवित्रकारक या शुद्धि प्रदान करने वाला। वेद में अनेक स्थानों पर पत्रितादायक परमेश्वर के लिए पवमान शब्द का प्रयोग किया गया है। सामवेद में एक पर्व या काण्ड को ही पावमान पर्व के नाम से जाना जाता है जिसका देवता पवमान सोम है। जैसे अग्नि देवता प्रमुख रूप से तेज और प्रकाश का प्रतीक है, वैसे ही पवमान सोम पवित्रता, समस्वरता, शान्ति और आनन्द का प्रतीक है। इस शब्द की महिमा को देखते हुए ही आद्य सम्पादक स्वर्गीय देवदत्त बाली द्वारा इस पत्रिका को यह नाम दिया गया था। हम आद्य सम्पादक स्वर्गीय बाली जी के अथक परिश्रम के लिए सदा उनका स्मरण करते रहेंगे। उनकी इस परम्परा को विदुषी बहिन श्रीमती राज बुद्धिराजा द्वारा भी कई वर्षों तक जारी रख इस पत्रिका के संचालन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया गया जिसके लिए हम हृदय से उनके प्रति आभारी हैं। पवमान पत्रिका पिछले छब्बीस वर्षों से निरन्तर आपके समक्ष अपने विभिन्न कलेवरों में आती रही है परन्तु इसमें एक बात सदैव सामान्य रही है और वह है, इसकी अपने उद्देश्य के प्रति निष्ठा। वैदिक सिद्धान्तों को सरलतम् भाषा-शैली में जन-जन तक पहुंचाना, आश्रम की गति विधियों और भावी कार्यक्रमों व योजनाओं को प्रचारित व प्रसारित करना इसका उद्देश्य रहा है। हमारा प्रयास यही रहेगा कि भविष्य में भी वैदिक सिद्धान्तों को आपके समक्ष सरल व सुबोध भाषा में रख सकें।

माह सितम्बर का अंक जब आप के हाथों में होगा तब पौराणिक बन्धु पित्र पक्ष या श्राद्ध मना रहे होंगे। उनकी मान्यता के अनुसार पित्र दोष से छुटकारा पाने हेतु दिवंगत आत्माओं की शान्ति के लिए प्रार्थना और कर्मकाण्ड की क्रियायें, तर्पण आदि करनी होती हैं। महर्षि दयानन्द ने पञ्चमहायज्ञविधि मे बताया है कि 'तर्पण' उसे कहते हैं जिस कर्म से विद्वान्‌रूपदेव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं। केवल जीवित पितरों को सुखी किया जा सकता है, मरे हुओं को नहीं क्योंकि उनकी सेवा नहीं हो सकती है। जीवित लोगों की ही श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है। महर्षि के अनुसार तर्पण आदि कर्मों से सत्कार करने योग्य तीन हैं- देव, ऋषि और पित्र जिनके तर्पण करने का हमारा कर्तव्य बनता है। देवों के तर्पण किये जाने के सम्बन्ध में यजुर्वेद (मं0 19.39) में प्रमाण मिलता है कि ज्ञानी पुरुष देव हैं जो हमें पवित्र विद्यादान देते हैं, इसलिए उनका तर्पण किये जाने योग्य है। इसी प्रकार यजुर्वेद (मं0 31.9) व शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण के साथ महर्षि कहते हैं कि विद्वान् बहु पराक्रमयुक्त होकर विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है। इससे आर्षेय अर्थात् ऋषिकर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें। हमारा कर्तव्य है कि हम वेद और शास्त्रों के वास्तविक ज्ञान को धारण करते हुए पवमान मार्ग पर चलें।

- कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

वेदामृत

वेदोत्पत्ति

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरि प्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः।।

(ऋग्वेद १०/७१/०१)

शब्दार्थ- (बृहस्पते) हे वेदाधिपते! परमात्मन्! (प्रथमम्) सबसे पूर्व, सृष्टि के आरम्भ में (नामधेयम्) विभिन्न पदार्थों के नामकरण की इच्छा (दधानः) रखते हुए आदि ऋषियों ने (यत्) जो (वाचः) वचन (प्रैरतः) उच्चारण किये वह वाणी का (अग्रम्) प्रथम प्रकाश था। (यत्) जो (एषाम्) सर्गारम्भ के ऋषियों में (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ होता है और (यत्) जो (अरिप्रम्) निर्दोष, पापरहित (आसीत्) होता है (एषाम्) इनके (गुहा) हृदय-गुहा में (निहितम्) रखा हुआ (तत्) वह भाग (प्रेणा) तेरी ही प्रेरणा और प्रेम के कारण (आविः) प्रकट होता है।

भावार्थ- सृष्टि का निर्माण हो गया। मनुष्यों की उत्पत्ति भी हो गई। सृष्टि के पदार्थों के नामकरण की इच्छा जाग्रत होने पर ईश्वर ने ऋषियों को वेद का ज्ञान दिया, वेद की भाषा सिखाई। यह वाणी का प्रथम प्रकाश था।

वह वाणी चार ऋषियों को मिली। इन चार को ही क्यों मिली? क्योंकि वे चार ही सबसे अधिक श्रेष्ठ और निष्पाप थे।

ईश्वर सर्वव्यापक है। उसने अपनी प्रेरणा और प्राणियों की हित-कामना से, प्राणियों के साथ प्रेम के कारण वेद-ज्ञान दिया। **'तदेषां-निहितं गुहाविः'** इनके हृदय में रक्खा हुआ वही ज्ञान आदि ऋषियों द्वारा अन्यों के लिए प्रकट हुआ अर्थात् ऋषि लोग उस ज्ञान को दूसरों को सिखाते हैं।

'यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्' का एक अर्थ यह भी होता है कि जो ज्ञान सबसे श्रेष्ठ और निर्दोष था, भ्रम आदि से रहित था वह ज्ञान इन ऋषियों को दिया गया।

-स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- वेद सौरभ से साभार

सूक्ष्म शरीर को जगाओ!

-म० प्रभु आश्रित महाराज

जाग जाने का फल

कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सूक्ष्म शरीर के अंग हैं। बाह्य-इन्द्रियाँ तो अन्तःकरण, मन और बुद्धि के द्वारा कार्य करती हैं। इसलिए मनुष्य जप, यज्ञ, दान आदि शुभ कार्यों को इस वास्ते करता है कि उसका सूक्ष्म शरीर शुद्ध हो जाए। जब तक सूक्ष्म शरीर शुद्ध न हो, वह जागता नहीं और जब तक जगता नहीं तब तक उस मनुष्य को प्रभु स्वीकार नहीं करते।

एक बार जब सूक्ष्म शरीर जग जाता है तो फिर प्रभु जिम्मेवारी ले लेते है; वह उसे फिर सोने नहीं देते। वैसे भी मनुष्य जब सो जाता है तो उसका सूक्ष्म शरीर बिना प्राण के सो जाता है। जब जागता है तो उसका सूक्ष्म शरीर ही जागता है। उसकी निशानी यह है कि जागने पर सर्वप्रथम अपने मुख, ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का मल त्याग करता है, उन्हें शुद्ध करता है और शुद्ध होकर पुरुषार्थ करने लग जाता है। ठीक इसी प्रकार आन्तरिक क्रिया होती है। सूक्ष्म शरीर जब जागकर बहिर्मुखी होता है, तब आत्मा की प्रेरणा जो प्राण में होती है उसके सहयोग से संसार का व्यवहार शरीर के लिए करता है, और जब सूक्ष्म शरीर जागकर अन्त में परलोक के कार्य के लिए लग जाता है तो आत्मा के लिए कार्य करने लग पड़ता है। फिर अन्तर्वृत्ति महापुरुषों से बल मिलता रहता है। उसके विचारों में उन्ही से विचारधारा आकर सहायता करती है।

सांसारिक कार्य के लिए तो सूर्य, अग्नि, वायु आदि जड़ देवता सहायता करते हैं, परन्तु आन्तरिक आत्मिक कार्यों में चेतन देव, विद्वान, योगी, सिद्ध-पुरुषों से धाराएँ मिलती हैं। गीता में कहा है-

यज्ञो दानं तपश्चैव पावमानी
मनीषिणाम्।(18-5)

अर्थात् 'यज्ञ, दान और तप मननशील, विचारक पुरुषों को पवित्र करते हैं।

सेठ-यज्ञ से मनुष्य का अन्तःकरण, सूक्ष्म शरीर कैसे शुद्ध हो जाता है?

प्रभु आश्रित-यज्ञ सकाम तो सकाम-विधि से होता है, परन्तु जो यज्ञ अन्तःकरण की शुद्धि के लिए किया जाए, यश, बल, धन, पुत्र आदि किसी प्रकार की इच्छाओं का नाममात्र तक न हो, तब अन्तःकरण की शुद्धि की इच्छावाले को निम्न मन्त्रों से प्रतिदिन आहुति देनी चाहिए-

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥
मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा॥

एक-एक मंत्र को समझकर 'स्वाहा' बोलकर आहुति देनी चाहिये। मन बुद्धि को एकाग्र करके (भावना और अर्थ समझकर) आहुति देने से कितना ही पापी क्यों न हो, उसके संस्कार-विचार बदल जायेंगे। साधक- याजक की भावनाएँ आकाश से सद्भावनाओं, सत्प्रेरणाओं के परमाणुओं को चुम्बक के सदृश आकर्षित करेंगी।

परमात्मा तो वायु को उत्पन्न करता है, याजक उस वायु को सुगन्धित बनाकर बलवान् करता है और आकाश में एकत्रित मेघों में जल को शुद्ध, बलिष्ठ और रोग-निवारक बनाता है। जब मनुष्य इस भावना से यज्ञ

जब हम छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देते हैं, तो महान उन्नति होती है
परन्तु महान उन्नति, कोई छोटी बात नहीं है।

करता है कि प्राणिमात्र का कल्याण हो, और इससे कोटि प्राणियों को शुद्ध प्राण मिलेगा, उनके प्राण में याजक का प्राण दाखिल हो जाएगा तो प्राण-बल बढ़ता जाता है।

सब इन्द्रियों में शुद्ध प्राण जाने से सब इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं। यज्ञ से दु:ख दूर होते हैं तो याजक को शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, बौद्धिक दु:ख नहीं होता। सबके सुख की भावना से यज्ञ करने वाले को आत्मिक शान्ति मिलती है।

नष्ट सात्त्विकता पाने का साधन: यज्ञ

यदि मनुष्य अपनी सात्त्विकता को बढ़ाना चाहे अथवा नष्ट की हुई सात्त्विकता को फिर से वापस लाना चाहे तो उसका एकमात्र साधन यज्ञ है। "यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।" यज्ञ की भावना से किया हुआ यज्ञ समस्त प्राणियों के अन्दर प्राण प्रविष्ट कर देता है। जब वह सबका प्राण (जीवन) बन जाता है, तो कोई देव अथवा अदेव (असुर) उससे अमित्रता नहीं करेगा।

मनुष्य के किये हुए कर्म के परमाणु और मानसिक भावों और विचारों की तरंग उसके इर्द-गिर्द भ्रमण करती रहती हैं और वहां तक पहुँचती हैं जहाँ तक कर्म का लक्ष्य होता है। ये परमाणु अथवा तरंगें पद्चिन्ह खोजने का काम करती है। जैसे चोर की खोज उसके पद्चिन्हों से लगाई जाती है और घातकों की कुत्तों और च्यूँटियों द्वारा खोज लगाई जाती है। दैनिक उर्दू समाचारपत्र 'प्रताप' ८.९.५७ में लिखा था कि ५.९.५७ को लखनऊ में एक मानव के वध की घटना हो गई। बैजनाथ संज्ञक एक व्यक्ति अपनी रखैल के साथ सोया हुआ था। तीन व्यक्ति उस गृह में प्रविष्ट हुए। वे बैजनाथ और उसकी रखैल को खड्ग से घायल करके भाग गए। बैजनाथ मर गया। पुलिस ने प्रात: घटनास्थल पर पहुँचकर कुत्ते से काम लिया। कुत्ते ने उस कमरे की वायु को सूँघकर जहाँ घटना हुई थी, रखैल घायल पड़ी थी, कुछ प्राण उसके बाकी थे। उससे पुलिस ने पूछा तो वह केवल इतना कह सकी कि तीन व्यक्ति थे, एक सीताराम था। इससे अधिक न बोल सकी, अथवा न बता सकी। कुत्ता फिर बाहर निकलकर एक मार्ग पर चल पड़ा और पड़ोस के एक मुहल्ला के मकान में पहुँच गया और एक कमरे में दाखिल होकर एक पत्र को जो वहाँ पड़ा था सूँघने के बाद सम्मुख बैठे हुए एक व्यक्ति की तरफ संकेत करने लगा जिसे पुलिस ने तुरन्त गिरफ्तार कर लिया। उस आदमी से नाम पूछा तो उसने कहा -'मेरा नाम सीताराम है।'

इसी तरह 'वीर अर्जुन' में बताया गया है कि १०.९.५७ को हावड़ा (कलकत्ता) से पिछले दिन किसी ने किराना की एक दुकान को लूट लिया था। दुकान के बाहर जो व्यक्ति सोया हुआ था उसका वध कर दिया। इस घटना की खोज के लिए पुलिस ने मित्ता नाम कुत्ते से काम लिया। मित्ता कुत्ता सीधा एक माँस-विक्रेता की दुकान में घुस गया जो घटनास्थल से कुछ दूर थी। मित्ता उस दुकान में एक व्यक्ति पर झपट पड़ा। पुलिस ने उसे पकड़ लिया। उसकी तलाशी ली तो रक्तरञ्जित छुरा बरामद हुआ।

भावना का प्रवाह

यज्ञ करते समय जब हम पुन:पुन: 'स्वाहा' और 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की भावना रखकर यज्ञ करते हैं तो हम अन्नमय, प्राणमय कोश के बल पर बोलते हैं। ये शब्द, भावनाएँ हमारे निर्बल परमाणुओं को आकाश में ले जाती हैं और इकट्ठी होती रहती हैं, व्यर्थ नहीं जाती। जब कभी मनोमय और विज्ञानमय कोश के बल से वह 'स्वाहा' और सर्वे भवन्तु सुखिन:' की ध्वनि निकलेगी तो सहसा वहाँ एकत्रित परमाणु-बारूद के गोले के सदृश (वाणी का बाण) समष्टि-मन:लोक में जाकर इस व्यष्टि-मन का सम्बन्ध समष्टि से जोड़ देंगे और याजक का मन शिव-संकल्पवाला होकर उसे अपने

कार्यों को छोटा मानकर उपेक्षा न करें। ये छोटे-छोटे कार्य ही कल बड़ी सफलता दिलाएंगे।

मन के दर्शन कराएगा, तब उसमें प्रभु का शिव संकल्प ही उठेगा।

सेठ–क्या यह जो नित्य कर्म हम करते हैं उससे ही हमारी सब कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं?

प्रभु आश्रित–एक तो जब हम सामान्य नित्यकर्म के भाव से हवनकुण्ड में आहुति देते हैं, उसके बदले में हम नित्यकर्म की आहुतियाँ देते है, इससे देवऋण उतरता है; दूसरी देते हैं विशेष आहुतियाँ, किसी विशेष लक्ष्य के लिए, उसकी सफलता तब हो सकती है जब हम लक्ष्य–विशेष लक्ष्य के लिए उस प्रकार की औषधियाँ डालें जिनमें लक्ष्य के पूरा करनेवाले देवता के गुण हो। उसका प्रभाव तुरन्त हो सकेगा।

उदाहरणरूपेण यदि हम रोग दूर करना चाहते हैं और रोगनाशक औषधि नहीं डालते तो रोग दूर नहीं होगा। ऐसे ही जब हम मन की पवित्रता और सद्बुद्धि की मांग करते हैं तो वही औषधियाँ हम डालें जिन औषधियों में उनके गुण हों, जो देवता हमारी बुद्धि और मन को पवित्र करनेवाले हों। ऐसे ही पुत्रेष्टि और वृष्टियज्ञ के लिए विशेष औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

काम–क्रोध आदि की निवृत्ति

जैसे–(१) उषाकाल अन्धकार को दूर करनेवाला है। उषा पापों को दूर करनेवाली है। जिस पदार्थ में उषा के गुण होंगे, जो उषाकाल में उगता–बढ़ता होगा, वह पदार्थ पापविनाशक परमाणुओं को लाएगा। जिस पदार्थ का उषाकाल में विनाश होता होगा या बढ़ने की समाप्ति होती होगी, वह पदार्थ तम–वृत्ति को लानेवाला होगा।

(२) जितने पदार्थ सोम हैं जैसे घृत, शहद, दुग्ध आदि, वे क्रोध और लोभ को दूर करते है; और जितने पदार्थ सुगन्धित हैं जैसे चन्दन, लोबान आदि, वे काम को दूर करते हैं; मध्यवर्ती (Moderate) पदार्थ अहंकार को और स्थूल–मिष्ट पदार्थ मोह को दूर करते हैं।

सेठ–यज्ञों से शान्ति, संसार और व्यक्ति की मानसिक शान्ति कैसे होती है?

प्रभु आश्रित– सुगन्धित पदार्थों से काम और मोह, मध्यवर्ती पदार्थों से अहंकार और सोम पदार्थों से लोभ और क्रोध शान्त होते हैं। इसी प्रकार भौतिक रूप में जो पदार्थ अथवा औषधियाँ रक्त को शुद्ध करती हैं, वे दैविक रूप से यज्ञ में चित्तवृत्तियों को शुद्ध करती हैं, जैसे शहद और शाहतरा, पित पापड़ा, और उशबा रक्त को शुद्ध करते हैं। यज्ञ में भी उनके प्रयोग से चित्तवृत्तियां शुद्ध होंगी।

सुगन्धित पदार्थ

दो प्रकार के सुगन्धित पदार्थ हैं- एक औषधियों के पत्ते और मूल, दूसरे वृक्षों- वनस्पतियों की समिधाएँ और तृण आदि केसर, कस्तूरी, वृक्षों का गोंद, चन्दन–धूप, लकड़ी, देवदरू, गूगल, राल आदि।

सोम पदार्थ

घृत, शहद, दुग्ध, सोमलताएं, आदि जितने मीठे पदार्थ सोम हैं उनमें श्रद्धा, प्रेम, स्नेह, आकर्षण पैदा करने की शक्ति है, और घृत में स्नेह के साथ आकर्षण और विकर्षण दोनों शक्तियाँ हैं।

आहार और व्यवहार

एक बात यहाँ स्मरणीय है कि इन्द्रियों का आहार और व्यवहार पाँच प्रकार का है। व्यवहार का आहार के साथ सम्बन्ध है। इन्द्रियाँ–शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। इन्द्रियों का व्यवहार सुनना, अनुभव करना, देखना, चखना और सूँघना है। इन्द्रियाँ जड़ हैं। मन के विचार बुद्धि के आचार के आधीन हैं।

सफलता दौड़ के अंतिम कदम से ही नहीं मिलती, बल्कि प्रत्येक कदम का उसमें योगदान होता है। इसलिए प्रत्येक कदम सोच–समझ कर सही रखें और जीतें।

ओ३म्

133 वीं जयन्ती 6 सितम्बर पर

--महर्षि दयानन्द के भक्त पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय--

'जो सोते जागते आर्य समाज की उन्नति के सपने लिया करते थे'

-मन मोहन कुमार आर्य, देहरादून

स्व० श्री गंगा प्रसाद उपाध्याय के जीवन के विविध प्रसंगो को विद्वान् लेखक ने रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया है। श्री उपाध्याय का जीवन हम सभी के लिए अनुकरणीय है। उन्होंने आर्यसमाज के सम्पर्क में आने के बाद न केवल अपने दुर्गुणों का त्याग किया अपितु अपनी सन्तान का लालन-पालन इस प्रकार किया कि वे व्यक्तिगत जीवन में अत्यन्त सफल ही नहीं रहे बल्कि आर्य समाज के सिद्धान्तों को सम्पूर्ण रूप से आत्मसात कर शिखर पर पहुंच गये और योग्य पिता के योग्य पुत्र स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती कहलाए। क्या हमने भी अपनी सन्तान में आर्यसमाज के गुण विकसित किये हैं और क्या इस समाज के साधारण सदस्य ही बन पाये हैं ?

-सम्पादक

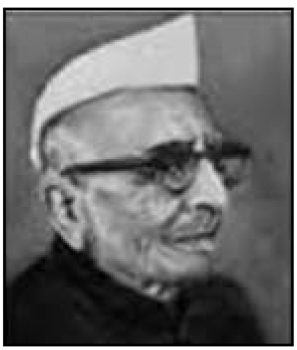

स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए अन्धविश्वास एवं कुरीतियों के उन्मूलन का कार्य अपरिहार्य है। महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं आर्य समाज के निष्ठावान अनुयायी पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय ने अपने जीवनकाल में मौखिक व्याख्यानों एवं लेखनी के द्वारा दीर्घकाल तक यह कार्य करके अविस्मरणीय समाज सेवा की।

जिला एटा में काली नदी के तट पर बसे नदरिया ग्राम में भाद्र शुक्ल 13, सम्वत् 1938 विक्रमी (6 सितम्बर सन् 1881) मंगलवार को एक कायस्थ कुलश्रेष्ठ परिवार में आपका जन्म हुआ। जब आपकी आयु मात्र 10 वर्ष की थी तब आपके पिता श्री कुंज बिहारी लाल जी का देहावसान हो जाने के कारण आपकी माता श्रीमति गोविन्दी देवी ने आपका पालन पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा, अभावग्रस्त होने के बावजूद, धैर्य एवं स्वाभिमान पूर्वक की।

आपकी शिक्षा सन् 1887 में नदरिया के एक मौलवी से उर्दू एवं फारसी के अध्ययन से आरम्भ हुई। इसके पश्चात भाभरा की एक पाठशाला तथा सन् 1892-95 के वर्षो में एटा की एक तहसील के स्कूल में आपने अध्ययन किया। मिडिल की परीक्षा में आप पूरे प्रान्त में चतुर्थ स्थान पर रहे। मिडिल के बाद आपने अलीगढ़ के एक राजकीय स्कूल से सन् 1901 में मैट्रिक की परीक्षा पास की। यहां आप अपने ताऊजी के पुत्र श्री राधा दामोदर के पास रहे। सन् 1898 में छात्रावास में आप बेलून के आर्य छात्रों के सम्पर्क में आकर आर्य समाज के अनुयायी बने। हुक्का पीने जैसी बुरी आदत आपने त्याग दी। आर्य समाज के प्रभाव से ही आपके जीवन में देवत्व का प्रादुर्भाव हुआ। अपने संस्मरण में आपने लिखा है कि आर्य समाज के सम्पर्क में आकर आप अन्धकार से प्रकाश में आये। दैनिक सन्ध्या एवं हवन तो आपने आरम्भ किया ही,

छोटे से छोटा काम भी पूरी श्रद्धा, बुद्धि और लगन से करें। ईश्वर की कृपा से सफलता निश्चित मिलेगी।

सत्यार्थ प्रकाश जैसी कालजयी पुस्तक आप हमेशा अपने साथ रखते थे।

आर्य समाज सत्याचरण का पाठ पढ़ाता है। उन दिनों अलीगढ़ के चम्पाबाग में आर्य विद्वानों के प्रवचन हो रहे थे और आप छिपकर वहां जाते थे। इससे आपको आत्म ग्लानि हुई। अतः आप राजकीय विद्यालय के मुख्याध्यापक श्री कैसविन के पास सत्संग में जाने की अनुमति लेने हेतु पहुंचे। अनुमति न मिलने पर आपने आर्य समाज के नेताओं को इसकी सूचना दी जिन्होंने आर्य छात्रों हेतु अलीगढ़ में एक शिक्षण संस्था ''वैदिक आश्रम'' की स्थापना की। इस संस्था में प्रवेश पाने वाले आप प्रथम छात्र थे। राजकीय विद्यालय में आपको शिक्षा शुल्क की छूट थी एवं छात्रवृत्ति भी मिलती थी। वैदिक आश्रम में प्रवेश लेने से इन सुविधाओं से आप वंचित हो गये। सत्य एवं धर्म के लिए आपका यह प्रथम त्याग था। इस प्रकार सामाजिक कार्यों में सोत्साह सक्रिय जीवन व्यतीत करते हुए आपने अंग्रेजी एवं दर्शन शास्त्र में एम. ए. किया।

आपका कर्मक्षेत्र शिक्षा से जुड़ा रहा। सन् 1904 में आप बिजनौर में राजकीय स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। इसी काल में आपने तत्कालीन पौराणिक मान्यताओं के विरूद्ध अपनी पत्नी श्रीमति कलादेवी का प्रयाग में यज्ञोपवती एवं पुत्री आयु. सुदक्षिणा का उपनयन संस्कार भी कराया। उन दिनों प्रयाग में यह किसी कन्या के यज्ञोपवीत संस्कार की प्रथम घटना थी।

पंडित जी बिजनौर एवं प्रयाग के आर्य समाज से सक्रिय रूप से जुड़े रहे। यहां आप आर्य समाज के उत्सवों पर आमंत्रित विद्वानों के भोजनादि की व्यवस्था करते थे। परिवार के लोग भी आपके कार्य में हाथ बंटाते थे। आप आर्य समाज चौक, प्रयाग के प्रधान, प्रयाग की आर्य कन्या पाठशाला के प्रबंधक, हिन्दू अनाथालय, मुट्ठीगंज के प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली के 1946 से 1951 तक मंत्री रहे। महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी, परोपकारिणी सभा ने भी आपको अपनी सभा का सदस्य मनोनीत किया था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपकी पुस्तक ''आस्तिकवाद'' पर अपना सर्वोच्च मंगला प्रसाद पुरस्कार प्रदान किया। पुरस्कार में प्राप्त धनराशि आपने आर्य समाज को दान कर प्रयाग में अपनी पत्नी के नाम पर हाल बनवाया। यहां हम यह कहना चाहेगें कि यह पुस्तक ज्ञानवर्धक, रोचक एवं स्वाध्याय के लिए अत्यन्त उपयोगी है। कुछ समय पूर्व विजयकुमार गोविन्दराम हासानान्द, दिल्ली एवं श्री घूड़मल प्रह्लादकुमार धर्मार्थ आर्य न्यास, हिण्डोन सिटी से इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है। प्रत्येक आर्य समाज के सदस्य को इसको अवश्य पढ़ना चाहिये, ऐसा हम अनुभव करते हैं।

सन् 1906-07 में बिजनौर आर्य समाज के अपने मंत्रित्व काल में आप ''आर्य मुसाफिर'' के लिए नियमित लिखते रहे। इन्हीं दिनों आपने संस्कृत भाषा का भी गम्भीर अध्ययन किया। जीवन काल की संध्यावेला में आपने अनुभव किया कि शास्त्रार्थ से प्रतिपक्षी कतराते हैं। अतः आर्य समाज को विपक्षियों के उन स्थानों पर जाकर प्रचार करना चाहिये जहां वह कार्य करते हैं। एक बार बाराबंकी में आपने पादरी ज्वालासिंह से गिरिजाघर में जाकर सौहार्दपूर्ण वातावरण में शास्त्रार्थ किया।

बिजनौर के राजकीय विद्यालय की नौकरी को आपने अपने स्वाभिमान के विरूद्ध अनुभव किया। आपकी धर्मपत्नी ने आपकी चिन्ता को समझकर नौकरी से त्याग पत्र देने की सहमति देकर पारिवारिक जीवन की सभी कठिनाईयों को सहर्ष सहन करने के लिए अपनी इच्छा व्यक्त की। अतः सन् 1918 में राजकीय विद्यालय की सेवा से त्यागपत्र देकर आपने डी.ए.वी. स्कूल, प्रयाग के मुख्याध्यापक का कार्य आरम्भ किया जो उन दिनों 10,600 रूपये घाटे में था। अध्यापकों के वेतन के लिए स्कूल में धन नहीं था। ऐसी स्थिति में स्कूल में कार्य आरम्भ किया और इस समस्या को हल करने के लिए आपने सबसे कम वेतन पाने वाले अध्यापक को पहले और स्वयं सबसे बाद में वेतन लेने की परम्परा डाली। इससे कर्मचारियों में व्याप्त असन्तोष दूर हो गया। 58 वर्ष

अच्छे लोगों की संगति ऐसी है, जैसे सुगंधित अगरबत्तियों की दुकान।
हम उस दुकान से कुछ खरीदें या न खरीदें, सुगंध तो मिलेगी ही।

की आयु में भी आप पूर्ण स्वस्थ थे और स्कूल के नियमानुसार पद पर कार्य कर सकते थे। उन दिनों हैदराबाद रियासत में हिन्दू जनता पर किये जा रहे अन्याय एवं हिन्दूओं के धार्मिक अधिकारों के उल्लंघन के कार्यों के विरूद्ध अपनी संलग्नता के कारण आपने सेवा से त्याग पत्र दे दिया। इस विद्यालय के बारे में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि इसकी आधारशिला अथर्ववेद के भाष्यकार वैदिक विद्वान पं. क्षेमकरण दास त्रिवेदी ने 14 मई 1916 को रखी थी।

पंडित जी सन् 1918 में पं. मदनमोहन मालवीय द्वारा प्रयाग में स्थापित सेवा समिति के आजीवन सदस्य बनकर सहयोग करते रहे। आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उपसभापति भी रहे। 30 सितम्बर, 1931 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन के झांसी अधिवेशन के दर्शन सम्मेलन के आप सभापति बनाये गये थे। पंडित जी इण्टरमीडिएट बोर्ड, उत्तर प्रदेश के सदस्य रहे। अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को परीक्षा एवं अध्यापन का माध्यम बनाने का प्रस्ताव भी आपने ही पहली बार किया और इसके लिए लगातार 3 वर्ष संघर्ष करके हिन्दी को कुछ विषयों के माध्यम के रूप में चुनने की छूट दिलाई। यह उल्लेखनीय है कि आपने अंग्रेजी के अस्वाभाविक एवं बोझिल रूप को बोर्ड के सदस्यों के सम्मुख रखा एवं उन्हें अपने तर्कों एवं युक्तियों से सहमत किया।

हैदराबाद आर्य सत्यागह में आपको सत्याग्रह के फील्ड मार्शल महात्मा नारायण स्वामी द्वारा आन्दोलन के पक्ष में पुस्तकें तैयार करने तथा प्रतिपक्षियों के आक्षेपों का उत्तर तैयार करने का कार्य दिया गया। आरम्भ में शोलापुर में आयोजित आर्य महासम्मेलन में भी आप सम्मिलित हुए थे। मार्च 1939 में प्रयाग लौटकर आप मई में पुनः दिल्ली आ गये और सत्याग्रह को सफल बनाने में जुट गये। जून 1939 में आपको सत्याग्रह का पक्ष ब्रिटिश सरकार व संसद के सम्मुख रखने हेतु निजाम के फरमानों व सरकार के पत्रों का परीक्षण एवं उसकी प्रतियां प्राप्त करने का कार्य सौंपा गया जिसे आपने अत्यन्त परिश्रम करके सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। अगस्त 1939 में यह सत्याग्रह सफलता प्राप्त कर समाप्त हुआ। पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय जी का इस ऐतिहासिक सत्याग्रह में अविस्मरणीय योगदान रहा। पंड़ित गंगा प्रसाद उपाध्याय जी के प्रयासों से दक्षिण भारत में आर्य समाज के प्रचार की नींव पड़ी। हैदराबाद सत्याग्रह के पश्चात आपने दक्षिण के अनेक प्रदेशों का भ्रमण कर प्रचार किया जिसके परिणाम स्वरूप मदुरै में आर्य समाज की स्थापना हो सकी। मदुरै में आर्य महासम्मेलन का स्वप्न एवं उसे क्रियात्मक रूप देने का श्रेय भी आपको ही है जिसमें क्रान्तिवीर वीर सावरकर, महाशय कृष्ण, डा. मुंजे, श्री निर्मल चटर्जी, लाला नारायणदत्त शामिल हुए थे।

हैदराबाद सत्याग्रह की समाप्ति पर हैदराबाद के युवकों को आर्य समाज के प्रचार हेतु तैयार करने के लिए शोलापुर में एक उपदेशक विद्यालय खोला गया जिसके आचार्य पं. गंगाप्रसाद जी थे। 20-25 युवकों को प्रशिक्षण दिया गया। पं. त्रिलोकचन्द्र शास्त्री, पं. महेन्द्र कुमार शास्त्री एवं पं. गोपदेव जी जैसे दार्शनिक विद्वानों ने अध्यापक के रूप में इस उपदेशक विद्यालय में अध्ययन किया। यहां रहते हुए आपने दक्षिण भारत के राज्यों में आर्य समाज का प्रचार भी किया। शोलापुर में 400-500 विद्वानों की उपस्थिति में आपकी जैनमत के एक विद्वान से दर्शनों पर वार्ता हुई। आपकी विद्वता से प्रभावित प्रतिपक्षी जैनी विद्वान ने कहा कि उपाध्याय जी की ऊहापोह एवं सूझबूझ से मैं प्रभावित हूं। सार्वदेशिक सभा के मंत्री के पद के कार्यकाल में आपने सार्वदेशिक प्रकाशन लि. की स्थापना कर आर्य साहित्य के प्रकाशन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। वैदिक विद्वान पं. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड को साथ लेकर आपने दिल्ली स्थित विदेशी राजदूतों को आर्य साहित्य भेंट करने की एक योजना का भी श्रीगणेश किया था जिसका उद्देश्य विदेशियों को आर्य विचारधारा का ज्ञान कराना था।

सन् 1950 में आप दक्षिणी अफ्रीका में वैदिक धर्म प्रचारक के रूप में भेजे गए। सन् 1951 में आप

यदि आप अपने कार्य में आनंद लेते हैं, तो कार्य में सफलता निश्चित है।
यदि अपने कार्य को मुसीबत समझते हैं, तो सफलता में संदेह है।

सिंगापुर एवं बैंकाक की प्रचार यात्रा पर गए। आपके पश्चात प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं आपके पुत्र डा. सत्य प्रकाश जी ने भी विश्व के अनेक देशों में वैदिक धर्म का प्रचार कर आपकी आंकाक्षा को साकार किया।

25 अगस्त 1968 को आपका देहान्त हुआ। प्राणोत्सर्ग के समय आप अपने पुत्र डा. सत्य प्रकाश जी से बातें कर रहे थे। बातें करते हुए आपका सिर उनकी गोद में गिर पड़ा। उपदेशक विद्यालय में आपके सहयोगी आचार्य महेन्द्र कुमार शास्त्री ने आपका मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि आप महर्षि दयानन्द के परमभक्त, सैद्धान्तिक ज्ञान के रहस्यविद्, तपस्वी, त्यागी, स्वाध्यायशील, आर्य समाज के नेता होकर भी परम लेखक, लेखनी के धनी तथा देश-विद्वतमुकुटमणि हैं। पंडित जी को गुदड़ी का लाल बताकर शास्त्री जी लिखते हैं कि उन्हें पाकर आर्य समाज सचमुच गौरवान्वित हुआ था।

पंडित जी ने अपने जीवनकाल में संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी एवं उर्दू में विपुल वैदिक साहित्य की रचना की है। आस्तिकवाद, जीवात्मा, अद्वैतवाद उनकी प्रमुख दार्शनिक पुस्तकें हैं। अन्य विषयों पर भी उन्होंने पर्याप्त लिखा है। शांकरभाष्यालोचन, मुक्ति से पुनरावृति, मैं और मेरा भगवान, मीमांसा प्रदीप, कर्मफल सिद्धान्त, आर्य समाज, सनातन धर्म और आर्य समाज, सायण और दयानन्द आदि उनकी कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। उनकी पुस्तकों के गुजराती, मराठी, बंगला, तमिल एवं तेलगू आदि भाषाओं में अनुवाद भी हुए है। अपने जीवन काल में आपने आर्य जगत की पत्र पत्रिकाओं में सैकड़ों विद्वतापूर्ण रोचक व प्रभावशाली लेख लिखे। लगभग 300 छोटे बड़े ग्रन्थों के प्रणेता और आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने आपकी विस्तृत जीवनी ''व्यक्ति से व्यक्तित्व'' नाम से लिखी है। श्री जिज्ञासु जी ने आपकी अधिकांश पुस्तकों को ''गंगा ज्ञान सागर'' के नाम से चार वृहदाकार खण्डों में प्रकाशित किया है। जिज्ञासु जी स्वयं को पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय का मानस पुत्र मानते हैं। डा. सत्य प्रकाश सरस्वती, उपाध्याय जी के बड़े पुत्र थे। आर्य समाज बिजनौर में आपका जन्म हुआ था। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन विभागा के अध्यक्ष रहे। आप रसायन शास्त्र में डी.एस-सी. की उच्च शोधोपाधि से अलंकृत थे और लगभग दो दर्जन शोधार्थियों को आपने रसायन विज्ञान में पी.एच.डी. कराई। आप देश विदेश के शीर्षस्थ वैज्ञानिकों के सम्पर्क में भी रहे और अनेक बार विदेश यात्रा कर प्रमुख वैज्ञानिकों से मिलते रहे। आपका अंग्रेजी का ज्ञान भी अत्यन्त उच्च स्तर का था। हमने विश्व व भारत में विख्यात एक वैज्ञानिक सस्थान ''भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून'' में आपके विज्ञान विषय के बिना नोट्स के सहारे धारा प्रवाह अंग्रेजी में व्याख्यान सुने हैं। आप विलक्षण बुद्धि से सम्पन्न थे जिसका ज्ञान आपके प्रवचनों को सुनकर हुआ करता था। आपने अनेक छोटे बड़े ग्रन्थ लिखे। आपका सबसे बड़ा लेखकीय कार्य अंग्रेजी भाषा में चार वेदों का भाष्य है जो अनेक खण्डों में दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली से मात्र दो हजार रूपयों में उपलब्ध है। हमने डा. सत्य प्रकाश जी के प्रवचन आर्य समाज देहरादून में 30-35 वर्ष पूर्व सुने थे जिनका हम पर गहरा प्रभाव हुआ था। आज भी उनके कुछ शब्द हमें स्मरण हैं। आपने अपने व्याख्यान में एक महत्वपूर्ण बात यह कही थी कि ईश्वर ने सृष्टि को बनाया और इसमें एक सूर्य की रचना की जो प्रकाश व ताप देता है। उसी ने सूर्य को सार्थकता प्रदान करने के लिए हमें व हमारी आंखों को बनाया है। इसी प्रकार शरीर में जितनी भी इन्द्रियां व अवयव हैं, उनको सार्थकता प्रदान करने के लिए सृष्टिकर्ता ने उनके विषय बनाये हैं।

पंडित गंगा प्रसाद उपाध्याय ने अपने जीवन में समाजिक हितों को पारिवारिक हितों पर वरीयता देकर एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उनकी 133 वीं जयन्ती पर हम उनको अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि भेंट करते हैं।

सफलता के चार सूत्र - एक - ध्यान से सुनना, दो - गहराई से विचार करना, तीन - सही निर्णय लेना और चार - उसको आचरण में लाना।

हृदय की पुकार

–म० आनन्द स्वामी

वासनाक्षय और मन

दीपक जल रहा है। यदि वायु का झोंका इसे बुझा न दे, तो यह जलता रहेगा। हाँ, तब तक जलता रहेगा, जब तक इसका तेल तथा बत्ती समाप्त नहीं हो जाती। जब तेल- बत्ती दोनों का प्रभाव हो जायेगा, तो दीपक का भी प्रभाव हो जायेगा। परन्तु यह न समझिये कि इनका नाश हो गया है; अपितु यह समझिये कि इनका रूपान्तर हो गया है।

यदि साधक अपने चित्त में कोई नई वासना न आने दे, तो चित्त की वासनाओ का दीपक समय आने पर स्वयमेव शान्त हो जायेगा, जन्म-जन्मान्तरों की एकत्रित वासनाओं का तेल जलते-जलते एक दिन तो समाप्त हो ही जाना है। हाँ, वासनाओं का नया तेल इस दीपक में साधक को नहीं डालना चाहिये। नया तेल पड़े नहीं, पुराना तेल जलता जाये, तब वासना का दीपक अवश्य शान्त हो जायेगा। इसी को वासनाक्षय कहते है।

इसी अवस्था के सम्बन्ध में यम ने नचिकेता को कहा था कि:

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।

कठ० ६।९४।।

'जब सारी कामनाएँ, जो इसके हृदय में हैं, छूट जाती है तो मनुष्य अमृत हो जाता है- इस अवस्था में ब्रह्म को प्राप्त होता है।'

परन्तु वासना तब तक पीछा नहीं छोड़ती, जब तक मन अपना संसार निर्माण करता रहता है। और मनुष्य है मननशील; यह मन सोते-जागते, उठते-बैठते, हर समय नई-से नई दुनिया बनाता रहता है। तब वासना का क्षय कैसे हो सकेगा ? और मन को तो ऐसा कपि स्वभाव है कि यह एक क्षण के लिए भी निश्चल नहीं होता। सत्य तो यह है कि मनुष्य इस मन का बंघा ही बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में भ्रमण करता और ऐसे कष्ट सहन करता है कि जिनके विचार से भी शरीर कम्पित हो उठता है। फिर यह मन ही एक ऐसा साधन है जिससे संसार के सारे कार्य सिद्ध भी होते है। और बिगड़ते भी है। वेद भगवान् ने तो कहा भी है:

'यस्मान ऋते किं चन कर्म क्रियते।' यजु० । ३४/३।।
'जिसके बिना कोई कर्म नहीं किया जाता।'
फिर वेद ने यह भी आदेश दे दिया कि:

'कथं न रमते मनः' अथर्व० १०। ७ । ३७ ।।
'मन तो कभी दम लेता नहीं ।'
जिस मन के संबंध में वेद ने यह भी घोषणा कर रखी है:

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित्।।

ऋ० ५ । ३० । ४ । ।

'भगवान् इन्द्र की इच्छा करने वाले! यदि तू समर्थ होकर मन को स्थिर करे, तो तू अकेला ही बहुतों (अनेक विघ्न-बाधाओं तथा विषयों) को भी युद्ध में जीत सकता है।

मन से मन का दमन

परन्तु इसका स्थिर होना ही तो एक बहुत बड़ी समस्या है।

पुनः मन में जो संकल्प तरंगवत् उठते रहते है, उनका अन्त ही नहीं होता। उनके द्वारा जीव कितनी विपत्तियों में फंसा रहता है, इसका तो अनुमान लगाना

सफलता आपकी परछाई है। यदि आप प्रकाश की तरफ चल रहे हैं, तो इसे पकड़ने की कोशिश न करें, यह स्वयं ही पीछे-पीछे आएगी।

भी कठिन है। योगवासिष्ठ के उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग १११ में कहा है:

भीमा संभ्रमदायिन्यः सङ्कल्पकारणादिमाः।

विपदः संप्रसूयन्ते मृगतुष्णाः मराविव।। 36 ।।

'संकल्परूपी क्लेश से भयंकर अनेक संभ्रम को देनेवाली विपत्तियाँ इस प्रकार उत्पन्न होती है जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा की नदियाँ।'

भगवान राम ने कितनी आतुरता से ऋषि से यह कहा था:

कथमस्यातिलोलस्य वेगो वेगेककारणम्।

चलतो मनसो ब्रह्मन्बलतो विनिवार्यते।।

उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग ।। ११२/२ ।।

'हे भगवान! अतिचंचल जो यह मन है, उसका वेग सम्पूर्ण तीव्र वेगों का मुख्य कारण है। वह बल से भी मन कैसे निवारण किया जाये?'

तब गुरु वसिष्ठ जी ने कहा था कि:

नेह चंचलताहीनं मनः क्वचन दृश्यते।

चंचलत्वं मनो धर्मो वह्नेर्धर्मोयशोष्णता।।

'हे राम जी! इस ब्रह्माण्ड में चंचलता से शून्य मन तो कहीं भी नहीं देख पड़ता। चंचलता मन का ऐसा धर्म है जैसे अग्नि का धर्म उष्णत्व है।'

यहाँ तक ही नहीं, योगवासिष्ठ ने तो यह भी कह डाला कि:

अध्यब्धिपानान्महतः सुभेरून्मूलनादपि।

अपि वह्नयश्चात् साधो विष्मश्चित्तनिग्रहः ।।

'समुद्र को पी डालने से, सुमेरु पर्वत को उखाड़ डालने से या फिर दहकते हुए अंगारों को सटक लेने से भी साधो! इस चित्त का निग्रह कर लेना कहीं कठिन है।'

योगवासिष्ठ की यह बात सुनकर कहीं निराश ही न हो जाना। इसने भी मनोनिग्रह महाकठिन तो कहा है, परन्तु असम्भव नहीं कहा। मन का स्थिर करना निस्संदेह कठिन है; यदि असम्भव होता तो वेद यह भी न कहता कि:

'युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्राः।'

ऋ० ५ । ८१ । १ ।।

'बुद्धिमान् योगीजन मन को युक्त, समाहित करते हैं।' अतएव उदास, निराश, हताश होने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, सावधान न हुए तो फिर निस्संदेह यह मन नाना योनियों में घुमाता फिरेगा।

अतः सर्वस्य जीवस्य बन्धुकृन्मानसं जगत्।'

।।पंचदशी।।

'यही निश्चय करना पड़ता है कि जीव का मानस-जगत् ही सबको बन्धन में डालना है।'

शुकदेव ने जब जनक जी से पूछा कि यह संसारी रूपी आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ? तो जीवनन्मुक्त जनक जी ने यही उत्तर दिया कि 'मन के विक्ल्प' से यह संसार उत्पन्न होता है और विकल्प के क्षय होने पर यह नष्ट हो जाया करता है।'

श्रीमद्भागवत में भी कहा है:

मनः सृजति वैदेहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः।

तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः।।

९२ । ५ । ६ ।।

'एकमात्र मन' ही इस आत्मा के लिए देह, गुण तथा कर्मादि की रचना करता है और उस मन को माया रचती है। उस मायारूपी उपाधि के कारण ही जीव को जन्म-मरण रूपी संसार प्राप्त होता है।'

इसी भागवत के ११वें स्कन्ध में यह कहा है:

नायं जनो में सुखदःखहेतुर्न देवतात्माग्रहकर्मकालाः।

मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्र परिवर्तयेद्यत्।।

भाग० २२ । ४३ ।।

'मेरे सुख-दुख का कारण ये लोग नहीं है; देवता और आत्मा भी नहीं है; ग्रह, काल, भी नहीं है; जो संसार-चक्र को चलाता है, उस मन को ही सुख-दुख

फूलों की सुगंध, उसी दिशा में जाती है, जिधर की हवा हो,
पर गुणी व्यक्ति के गुणों की सुगंध, चारों दिशाओं में फैलती है। गुणवान बनें।

का कारण कहते है।' यह मन ही सबको संसार में लिये फिरने का साधन है। यदि मन को संकल्प-विकल्प-रहित कर दिया जाये, तब संसार की वासनाएँ कहाँ टिकेंगी? मन का दमन करने की युक्ति गुरु वसिष्ठ ने यह बतलाई है:

'मन एव समर्थ वो दृढनिग्रहे।'

'हे राम जी! तुम्हारा मन ही मन को दमन करने में समर्थ है।' यहाँ मन का प्रयोजन केवल मन ही नहीं, अपितु बुद्धि तथा चित्त से मिला हुआ मन अभिप्रेत है। मन बेचारा अकेला तो कुछ भी नहीं। इसका काम तो केवल ग्रहण करना और छोड़ना है। जब मन किसी इंद्रिय द्वारा किसी वस्तु या विषय को ग्रहण करता है, तो उसे तत्काल बुद्धि के पास पहुँचा देता है। वह वस्तु अच्छी है या बुरी, सेवन करने योग्य है या अयोग्य, धर्म-मर्यादानुसार है या विपरीत, उचित है अथवा अनुचित, इसका निश्चय यह मन नहीं करता, तब चित्त उसे धारण कर लेता है और तब संसार बनने लगता है। अब राग की उत्पत्ति हो गई; उस वस्तु में एक प्रकार की ममता आने लगी। उसे प्राप्त करने के लिए अनेक योजनाएँ बुद्धि ने बनानी आरम्भ कर दीं। यदि उसका मिलना कठिन प्रतीत हुआ, तब क्रोध की ज्वाला भड़की। क्रोध की अग्नि प्रज्वलित होते ही बुद्धि के अत्यन्त सूक्ष्म तन्तु गर्म होने लगते है। वह फिर अपना कार्य भली-भाँति नहीं कर सकती। यदि तमोगुण-प्रधान है, तो क्रोध बुद्धि का नाश कर देता है और मनुष्य से ऐसा घृणित कर्म करा देता है कि तत्पश्चात् उसे स्वयं लज्जा आने लगती है। यदि रजोगुण-प्रधान है तो हानि तो बहुत पहुँचाता है, परन्तु मात्रा अधिक नहीं बढ़ती। यदि सत्वगुण-प्रधान हो, तो पहले तो क्रोध आता ही नहीं, यदि आ भी जाये, तो बिना हानि पहुंचाये ही शान्त हो जाता है। परन्तु अपनी रेखा चित्त पर छोड़ जाता है।

अब आप देखिये कि मन ने तो केवल किसी एक इन्द्रिय द्वारा किसी वस्तु का ग्रहण-मात्र किया और यहाँ संसार बनना आरम्भ हो गया। वासनाएँ इसी प्रकार से बनती हैं। मन ने ग्रहण करने से रुकना नहीं और वासनाओं का अन्त होना नहीं। तो क्या फिर निराश हो जाएँ? नहीं, ऐसी बात नहीं है।

न्याय-दर्शन का आदेश

न्याय-दर्शन में बहुत आशाजनक तथ्य बतलाया गया हैं। वह यह कि-मन एक समय में एक ही काम कर सकता है, दो नहीं। चरक-संहिता के शरीर-स्थान में भी मन का यही लक्षण किया गया है:

लक्षण-मनसो ज्ञानस्याभावो भाव एव वा ॥ १६ ॥

'ज्ञान होना और ज्ञान का न होना, मन का लक्षण है अर्थात एक काल में एक वस्तु का ज्ञान होना और दूसरी का न होना, या यूं कहिये कि दो ज्ञानों का एक ही काल में उत्पन्न न होना, मन का लक्षण है।'

मन ने किसी-न किसी वस्तु को एक समय में पकड़ना ही है। तब इस मन से कहो, भैया! तुमने तो किसी वस्तु को ग्रहण करना ही है, तब नाशवान् संसारी वस्तुएँ क्यों पकड़ते हो? उस अविनाशी, शुद्ध तब नाश्वान् संसारी वस्तुएँ क्यों पकड़ते हो? उस अविनाशी, शुद्ध बुद्ध, निर्मल, ब्रह्म-तत्व को क्यों न ग्रहण कर लो, जिसके ग्रहण कर लेने से फिर शेष कुछ भी ग्रहण करने योग्य नहीं रहता? इस परिवर्तनशील संसार में सार वस्तु केवल आत्मा ही है, बाकी सारा आकाश, वायु, अग्नि, जल, पुथ्वी ही का पसारा है और यह सब नाश होने वाला है। जिस सुन्दर रूप पर तू मुग्ध हो रहा है, जिस स्वादु भोजन के पीछे तू राल टपका रहा है, जिस मधुर सुरीली स्वर-लहरी पर तू कान रखे है, जिस कोमलता के लिए तू हस्तीवत् उन्मत हो रहा है, जो सुगन्ध तुझे भँवरे की भाँति मृत्यु का ग्रास बनाना चाहती है- यह सब पाँच भूतों की सृष्टि है, और कुछ भी नहीं। यह अभी है, अभी रूपान्तर हो जायेगा।

किसी को हराना तो आसान है, परंतु किसी का हृदय जीतना .... बहुत कठिन है।

जीवन के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण

–कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

एक बार भारत के सन्तों की एक मण्डली ग्रीस पहुंची जिसकी सुकरात से भेंट हुई। सन्तों ने सुकरात से पूछा कि जीवन की समस्याओं के बारे में उसकी क्या सीख है। सुकरात ने उत्तर दिया कि वह सिखाएंगे कि यह जीवन क्या है, इस जीवन की समस्याएं क्या हैं, हमें दुनिया में किस प्रकार से रहना चाहिए, हमारा पार्थिव जीवन में एक दूसरे से व्यवहार कैसा होना चाहिए। यह उत्तर सुनकर भारत की मण्डली का एक सन्त खिलखिला कर हंस पड़ा। उसने सोचा कि जो व्यक्ति इस भौतिक जीवन के साथ बंधे अभौतिक दिव्य जीवन को नहीं जानता है, वह इस भौतिक जीवन के सम्बन्ध में क्या सीख दे सकता है। भारतीय सन्त ने सुकरात से पूछा कि क्या उसे इस पार्थिव जीवन के अतिरिक्त दिव्य जीवन का भी पता है, वह जीवन जो लौकिक न होकर पारलौकिक है, जो भौतिक न होकर आध्यात्मिक है, जो इस दुनिया के साथ बंधा न होकर, इससे अलग है, जो स्वतन्त्र है। जो इस लोक के जीवन से जीवित न होकर उस लोक के जीवन से जीता है। जिसके साथ बंधा होकर यह पार्थिव जीवन, जीवन कहलाता है, क्या सुकरात को उस दिव्य जीवन का पता है। अगर सुकरात को उस पारलौकिक जीवन का पता नहीं तो वह इहलौकिक जीवन के बारे में क्या बोल सकता था। इस संसार का जीवन तो तभी सार्थक हो सकता है जब वह उस पारलौकिक जीवन की एक कड़ी हो। उसके साथ एक श्रृंखला में बंधा हो। अन्यथा अगर इहलौकिक जीवन सिर्फ इस लोक का है, यहां प्रारम्भ होकर यहीं समाप्त हो जाता है और किसी श्रृंखला की कड़ी नहीं है, तब मनुष्य का जीवन पैदा होना और मिट्टी में मिल जाना– इसके सिवा कुछ नहीं रहता। फिर इस जीवन के विषय में क्या सीख ली गयी और क्या समाधान खोजा गया है।

भौतिकता और आध्यात्मिकता को समझे बिना जीवन को सम्पूर्ण रूप से नहीं समझा जा सकता है। शरीर, ज्ञान, बल आदि अपना मान कर चलना और सांसारिक पदार्थों में सुख लेते हुए उन्हें ही अन्तिम साध्य मान लेना भौतिकता है। सब कुछ ईश्वर को समर्पित करते हुए, उसका ही मानकर सदा तप युक्त जीवन बिताते हुए परमात्मा की उपासना करते रहना आध्यात्मिकता है। जहां भौतिकता में व्यक्ति इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति हेतु लोभ, मोह आदि में फंसा रहता है, वहीं आध्यात्मिक व्यक्ति सदैव उत्तम कर्मों को करता हुआ प्रभु प्राप्ति के अपने लक्ष्य को सदैव याद रखते हुए अपनी आत्मा के अनुरूप समस्त प्राणियों के सुख–दु:ख को समझते हुए परोपकार में लगा रहता है। जीवन के सम्बन्ध में वैदिक दृष्टिकोण यह है कि हमारा यह जीवन तभी सार्थक कहा जा सकता है, जब यह इस भौतिक जीवन के आगे जो कुछ है, उसकी तैयारी समझा जाय। अगर यह जीवन अपने आप में स्वतन्त्र है, किसी भावी जीवन की तैयारी नहीं है, तो यह व्यर्थ सा हो जाता है। इस दृष्टिकोंण से हम जीवन केवल शरीर का मानते हैं जो शरीरी अर्थात् आत्मा से संचालित है, यह अपने आप में पूर्ण नहीं है तथा किसी श्रृंखला की कड़ी है जिसकी वजह से हम जीवित हैं। हम यह सोचने पर विवश हो जाते हैं कि यथार्थ सत्ता शरीर की है या शरीरी की है। यदि हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करें तो ज्यों–ज्यों हम ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करते जाते हैं त्यों–त्यों यह सिद्ध होता जाता है कि हमारा ज्ञान शरीरी या आत्मा का ज्ञान है। केनोपनिषद् में कहा गया है

आपके स्वप्नों में किसी को रूचि नहीं है। आपके साथी तब तक आपके स्वप्नों का मजाक उड़ाएंगे, जब तक आप उन्हें सच्चाई में नहीं बदल देते।

'यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विज्ञातां, विजानतामविजानताम्'। इस सापेक्ष को जानकार जो अभिमान करता है कि वह सब कुछ जान गया है, वह कुछ नहीं जान पाया है और जो यह अभिमान नहीं रखता कि वह ब्रह्म को अच्छी तरह जानता है, वही कुछ जानता है। अगर हमारा जीवन सम्पूर्ण से जुड़ा हुआ नहीं है तो यह जीवन के अधूरे भाग में ही चक्कर काट रहा है और फिर इहलौकिक जीवन बिताना अधूरे जीवन में ही विचरना है और सम्पूर्ण के साथ अपने सम्बन्ध को काट देना है। ऐसे में जीवन का कोई अर्थ नहीं रहता। जीवन की सार्थकता सम्पूर्ण को अपने सामने रखने पर ही सिद्ध होती है। पार्थिव जीवन को दिव्य जीवन से और भौतिक जीवन को आध्यात्मिक जीवन से भिन्न समझ लेने का परिणाम यह होता है कि इन्द्रिय युक्त भौतिक जीवन को हम सब कुछ समझ लेते हैं। इन्द्रियों का जीवन विषय भोग के लिए है, ऐसे में मनुष्य किसी दिशा में न जाकर जीवन के मार्ग में भटक जाता है। जीवन की दिशा निश्चित होने पर मनुष्य अपनी जीवन नौका खेने में दिशाभ्रमित हो जाता है। वह हर समय सन्देह में पड़ा रहता है कि जीवन के मार्ग में सत्य क्या है, सही रास्ता क्या है। कठोपनिषद् में कहा गया है 'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।। अर्थात् शरीर एक रथ है, इस पर रथ का मालिक आत्मा बैठा है। बुद्धिरूपी साईस इस रथ को चला रहा है जिसके हाथ में मन रूपी लगाम है। यदि आत्मा मालिक नहीं रहता और इन्द्रियां शरीर की मालिक बन जाती हैं तो उनके रथ चलाने पर मनुष्य अपने जीवन के मार्ग से भटक जाता है। भौतिकता और आध्यात्मिकता को शास्त्रों में प्रेय और श्रेय मार्ग बतलाया गया है। जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम शरीर को साधन मानकर जीवन के कार्यक्रम का निर्माण करें और उसे उलटा चलाने का प्रयास न करें। यह भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन को पाने की एक कड़ी है। व्यक्ति साधन ही न जुटाते रह जाये क्योंकि ऐसा करते समय वह स्वयं ही साधन बन जाता है और जिस यात्रा पर वह निकला है वह अधूरी समाप्त होती है। भौतिकता के मूल में एषणाएं होती है। एषणाएं मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं-वित्तैषणा, पुत्तैषणा और लोकैषणा। वेद आदि शास्त्रों में पुरुषार्थ करते हुए धन कमा कर ऐश्वर्य प्राप्त करने पर बल दिया गया है और यह कहा गया है कि धन का उचित उपयोग और उपभोग करना चाहिए परन्तु भौतिकता के चलते लोगों में अधिकाधिक धन कमाते हुए ऐशो-आराम की इच्छा जाग्रत होती है। कठोपनिषद में कहा गया है कि धन-सम्पत्ति से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता है। पुत्तैषणा का अर्थ है सन्तान की इच्छा। हम न केवल सन्तान की इच्छा करते हैं अपितु यह भी चाहते हैं कि उसके लिए भी धन-सम्पत्ति का अम्बार लगा कर इस संसार से विदा हों। संसार के सारे भोग मेरे लिए और मेरी सन्तान आदि के लिए हों। जिन सुख-सुविधाओं और ऐश्वर्यों से हम वंचित रहे हैं, आने वाली पीढ़ियों को ऐसा बनायें कि वो हमें वह सब प्राप्त कराकर अमर कर दें। लोकैषणा का अर्थ है -यश, ख्याति, मान-सम्मान आदि की चाह करना। इस कामना के वशीभूत व्यक्ति अपने सारे कार्य इस प्रकार लोगों के सामने प्रचारित करते हैं कि उनको सम्मान मिले। वे वर्तमान समय की प्रशंसा से ही सन्तुष्ट नहीं रहते अपितु चाहते हैं कि मरने के बाद भी उनकी मूर्तियां चौराहों पर स्थापित रहें। शास्त्रों में एषणाओं को मोक्ष मार्ग में पड़ने वाली खाई बताया गया है। एषणाओं का त्याग करके योग के अष्टांग मार्ग पर चलते हुए आध्यात्मिकता को अपनाकर ही ब्रह्म की प्राप्ति की जा सकती है। यदि आत्मोन्नति करनी है तो भौतिकता के मार्ग को छोड़ कर आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलना होगा।

जो खो दिया, उसको न सोचें, क्योंकि, खोया हुआ वापस नहीं आएगा।
हम, भविष्य को अच्छा बनाएं, शायद खोए हुए जैसा, फिर से और मिल जाए।

भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता एवं ह्रास

-श्री रवीन्द्र कुमार, शास्त्री

विश्व की समस्त संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसी संस्कृति के आधार पर भारत विश्व के गुरु पद से अलङ्कृत हुआ था। शारीरिक सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए जो अभिन्न एवं सर्वत: प्रभावी उपाय है, वे सब इस संस्कृति और उसके ग्रन्थों में है। जो महापुरुष इस पुण्य वसुन्धरा पर उत्पन्न हुए है।, उनके जीवन को ऊर्ध्व एवं उदात्त बनाने वाले गुणों की निधि इसी संस्कृति में मिलती है। मानवता के उत्तम आदर्शो का समावेश इसी संस्कृति में है। साधारण मनुष्य से महापुरुष बनने का उपाय इसी संस्कृति में निहित है। उपसंहार स्वरूप में कहा जाए तो सर्वाङ्गीण विकास का मार्ग और उसकी कुञ्जी भारतीय संस्कृति के पास है।

सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के समान मानने की प्ररणा देने वाले, एकता की भावना का विकास करने वाले, संयुक्त परिवार की शिक्षा देने वाले, अहिंसा का रास्ता दिखाने वाले, माता-पिता व गुरु को मानव जीवन के श्रेष्ठ निर्माता मानने वाले, जाति के भेद-भाव का जहाँ अंश भी न हो, ऊँच-नीच का लेशमात्र भी जहाँ स्थान न हो, सर्वोत्तम कर्म यज्ञ करने का आदेश देने वाले, राष्ट्रीय भावना से सर्वत: ओत-प्रोत, ज्ञान-विज्ञान के आदि स्त्रोत, विश्व के आदिम ग्रन्थ, अपौरुषेय वेद जैसा अनुपम ग्रन्थ जिस संस्कृति के पास है, उस संस्कृति की श्रेष्ठता पर क्या कोई प्रश्नचिन्ह हो सकता है? कदापि नहीं। इन सब विषमताओं के उपरान्त भी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति का तमसावृत अध: गमन सतत हो रहा है। आज यह चिन्ता का विषय है। मैं यथा सामर्थ्य कुछ बिन्दुओं पर आपके समक्ष विचार प्रकट करता हूँ।

१. **पश्चिमी झञ्झावात**- पश्चिमी सभ्यता के भयङ्कर झञ्झावात ने भारतीय संस्कृति को दबा दिया है। आज माता-पिता और उनके बच्चे भारतीय वेश भूषा एवं परिधान को पसन्द नहीं करते हैं। उन्हें पश्चिमी परिधान ही पसन्द है। उसके विपरीत भारतीय संस्कृति में शालीनता की वेशभूषा का प्रचलन है। आज अगर कोई परिवार भारतीय संस्कृति को अपनाता भी है तो उसे समाज नकारात्मक दृष्टि से देखता है। इससे भारतीय संस्कृति पीछे होती जा रही है। नवागन्तुक पीढ़ी तो सही से भारतीय संस्कृति को जानती भी नहीं है। फिर आगे वह पीढ़ी कैसे भारतीयता को अपना पायेगी।

२. **शिक्षापद्धति**- आधुनिक शिक्षा पद्धति ने अपनी पुरानी शिक्षा पद्धति को कोसों दूर छोड़ दिया है। आज तो समाज हिन्दी माध्यम से पढ़ाना नहीं चाहता है। वह तो केवल और केवल अंग्रेजी माध्यम को ही श्रेष्ठ मानता है। चाहे वह कैसी भी शिक्षा दे, समाज को उससे कोई लेना देना नहीं है, बस अंग्रेजी माध्यम से ही बच्चे को पढ़ाना है। इस मानसिकता से भारतीय संस्कृति को बहुत हानि हो रही है। यह ध्यान रखना चाहिए कि पश्चिमी सभ्यता से छात्र धन तो कमा सकता है। वह आलिशान भवन बना सकता है, पर माता-पिता की सेवा करने का समय, देश की सेवा करने का

समुद्र की लहरें हमें इसलिए प्रेरणा नहीं देतीं कि वे गिरती--उठती हैं।
बल्कि इसलिए कि--''वे कुछ गिर कर, हर बार उठने की कोशिश करती हैं।''

समय, राष्ट्र के प्रति समर्पण भावना जैसे गुण तो शायद ही उसमें देखने को मिलें? यह तो माता-पिता को देखना है कि वह बच्चे को कैसा बनाना चाहते हैं।

३. **सरकार की नीतियाँ**- पश्चिमी सभ्यता का वर्चस्व बढ़ने का कारण सरकार की नीतियाँ हैं। आज सरकार हिन्दी माध्यम या सरकारी स्कूलों से पढ़े बच्चों को आगे बढ़ाने का कोई उपाय नहीं करती है। इसके विपरीत इन छात्रो को कैसे पीछे किया जा सकता है, वह यही रणनीति बनाती है। इस मानसिकता के कारण परिस्थितिवश माता-पिता को अपना बच्चा पब्लिक स्कूल में पढ़ाना पड़ता है। उसे अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाना उनकी विवशता हो जाती है। आज हिन्दी भाषा का विकास कैसे हो? बच्चों में भारतीय मानसिकता कैसे आये? हमारे बच्चों में राष्ट्रीयता की प्रबल भावना हो? इत्यादि समस्याओं का समाधान सरकार के पक्ष से हो तो निश्चित ही भारतीय संस्कृति का विकास होगा। इस प्रकार के अनेकों कारण है, जिनके प्रतिफल से भारतीयता सिमट रही है।

प्रिय सुहृद् पाठकगण ! भारतीय संस्कृति परिश्रम एवं स्वावलंबन सिखाती है। यह संस्कृति सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रहादि की शिक्षा देती है। यह पाप से अर्जित धन से जीना नहीं अपितु परिश्रम से अर्जित धन से जीना सिखाती है। यह परोपकार की भावना का विकास करती है। यह संस्कृति आपदाओं से भयभीत होना नहीं अपितु उनसे लड़ना सिखाती है। वास्तव में जीवन को जीने की वास्तविक कला तो भारतीय संस्कृति ही सिखाती है। भारतीय संस्कृति को जीवन में न अपनाने के भी अनेक दोष हैं। यथा सामर्थ्य पाठकों के समक्ष उनका भी वर्णन करता हूँ।

१. **परिश्रम से दूरी**- भारतीय संस्कृति परिश्रम से जीना सिखाती है। यथा सामर्थ्य अपने जीवन को परिश्रमी बनाकर रखना चाहिए। इसका सबसे बड़ा लाभ है कि व्यक्ति अनेक रोगों से बचा रहता है।

२. **स्वावलंबन की समाप्ति**- स्वावलंबन प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपरिहार्य है। स्वावलंबन से व्यक्ति में आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। स्वावलंबन व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है। पश्चिमी सभ्यता के आगमन से स्वावलंबन दूर हो गया है।

३. **निराशा का भाव**- भारतीय संस्कृति आशावादी है। यहाँ निराशा का कोई स्थान नहीं है। हमारी संस्कृति है। कर्म की प्रेरणा देती है। फल के लिए हम परतन्त्र हैं। इसलिए बड़ी से बड़ी आपदा में भी हम पराजय नहीं देखते है। पाश्चात्य सभ्यता के कारण चारों तरफ निराशा का भाव उत्पन्न हो रहा है। जिसके कारण आत्महत्या, मानसिक तनाव जैसी भयंकर बीमारियाँ उत्पन्न हो रही है।

४. **राष्ट्रीय भावना का अभाव**- भारतीय संस्कृति के अभाव में राष्ट्रीय भावना का विकास असम्भव है। इस धरा पर सबसे पुरानी संस्कृति भारतीय संस्कृति है जिसका कारण भारतीय संस्कृति के अनुयायियों में प्रबल राष्ट्रीय भावना का होना है। आज युवाओं में पश्चिमी संस्कृति के कारण राष्ट्रीय भावना का ह्रास हुआ है। जिसका सीधा प्रभाव राष्ट्र के उत्थान पर पड़ता है।

५. **पूर्वजों का अनादर**- पाश्चात्यता के कारण आज घरों में अपने बड़ो का आदर कम हुआ करता है।

इतवार को भी कुछ काम अवश्य करें क्योंकि इतवार को भी हम कुछ न कुछ सुख भोगते ही हैं। बिना पुरूषार्थ के सुख भोगना अच्छा नहीं है।

आज का युवा अकेला रहना पसन्द करता है। अपने जीवन में वह किसी की हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता है। घर के बड़े लोग यदि उसे अपने जीवन के अनुभव के आधार पर यदि कुछ अच्छा समझाने का प्रयास करते हैं, तो वह उसे अस्वीकार करता है। जिसके कारण कई बार माता-पिता या दादा-दादी से बच्चा दूर रहने लगता है।

६. **हिन्दी भाषा के प्रचार का अभाव**- पाश्चात्यता के कारण हिन्दी भाषा का प्रचलन कम और अंग्रेजी का अधिक हुआ है। आज घरों में हिन्दी भाषा की जगह अंग्रेजी को बोलने का शौक बढ़ गया है। आज बच्चे हिन्दी के गणितीय अङ्क भी नहीं बोल पाते हैं और न ही समझ पाते हैं।जिसके कारण हिन्दी का विकास रुक गया है। यह भारत के लिए चिन्ता का विषय है। इस प्रकार अनेक उदाहरण ऐसे प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनकी उत्पत्ति पाश्चात्यता के कारण हुई है।

प्रिय पाठको! यथासामर्थ्य मैंने भारतीय संस्कृति के ह्रास एवं उसके कारणों पर प्रकाश ड़ाला है। आज आवश्यकता है कि यदि हम भारतीय संस्कृति को आगे बढ़ाना चाहते है, तो उसे जीवन में अपनाना भी पड़ेगा। यह तो निश्चित है कि आज भी विश्व की समस्त संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति अत्यन्त श्रेष्ठ व पूजनीय है।

आज इस पाश्चात्यता के बढ़ते प्रभाव में भारतीयता से ओत-प्रोत छात्रों के निर्माण के लिए गुरुकुल परम्परा कटिबद्ध है। यहाँ प्रात:काल से रात्रिपर्यन्त भारतीयता की शिक्षा प्रदान की जाती है। जिसके कारण गुरुकुलों की सफलता का औसत सर्वोपरि है। संसाधनों के पर्याप्त अभाव में भी गुरुकुलों की सफलता एवं उनके छात्रों की उपलब्धि सभी को सन्तोष प्रदान करती है। आज भारतीय संस्कृति के पुरोधा गुरुकुलों को हमें यथा सामर्थ्य सहयोग करने की आवश्यकता है। जिससे इस आर्थिक युग में भी ये गुरुकुल अपनी सफलता को निरन्तर बढ़ाये रखें।

सावधान

जब तुमने किसी का एक बार अपमान कर लिया, चाहे वह तुमसे कमजोर व छोटा है या बड़ा और बलवान् है और वह हो गया, मुकाबला नहीं किया या हार गया, तुम किसी काल में भी बेफिक्र (निश्चिन्त) न रहो। अपमान एक ऐसी बुराई है जो अपमानित मनुष्य के हृदय को विदीर्ण कर देती है, छेद कर देती है। उसे नफरत (घृणा) और द्वेष हो जाता है। यह अग्नि बिना विचारे भी गुप्त रूप से दहकती जलती रहती है और किसी न किसी दिन इसी ही जन्म में वह भयानक क्रोध का रूप धारण कर आक्रमण कर देती है। यदि इस जन्म में अपमानित मनुष्य की अग्नि किसी कारण से वेग में न आ सकी तो अगले जन्म में और भी अधिक प्रचण्ड होकर बदला लेगी, इसलिए किसी का भी अपमान करना अच्छा नहीं। किसी का अपमान करके उसे परास्त करना, बहादुरी नहीं। बहादुरी है तो अपने सत्य के बल से परास्त किया जावे, आक्रमण करने का भय नहीं रहता और घृणा भी दूर हो सकती है।

म० प्रभु आश्रित महाराज

विजय-आपका दुनिया से परिचय कराती है, और पराजय-दुनिया का आपसे परिचय कराती है क्योंकि, पराजय होने पर दुनिया, क्या बोलती है, यह आप जान लेते हैं।

'एक सिद्धान्त 'वेद ईश्वरी ज्ञान है'

–स्व० आचार्य प्रियव्रत

ऋषि दयानन्द के शब्दों में 'वेद' ईश्वर की वाणी है और सब सत्य विद्याओं का आदि मूल परमेश्वर है। स्वामी दयानन्द के पूर्ववर्ती ऋषि मुनियों मनु, व्यास पतंजलि, कणाद, गौतम और शंकर आदि सभी ने वेद के विषय में इसी प्रकार के विचार वक्त किए है। ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद्, दर्शन, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, ज्योतिष, रामायण, महाभारत और पुराण सभी ने वेद को ईश्वरीय और ज्ञान विज्ञान का ग्रंथ माना है। मीमांसा और सांख्य दर्शन के अनुयायी जो ईश्वरकी सत्ता को स्वीकार नहीं करते वे भी वेद को नित्य अनादि तथा धर्म का उपदेश देने वाला ग्रंथ मानते है। वेद की जो गौरवमयी और ऊंची प्रतिष्ठा और मान्यता रही है उसे सदैव ध्यान में रखना चाहिए। पायचात्य विद्वानों से प्रभावित होकर 'वेदों' के सम्बन्ध में हलके विचारों को प्रश्रय नहीं देना चाहिए।

प्राचीन मान्यता के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में ही ईश्वर ने वेदों का ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामक चार ऋषियों को दिया और इनसे दूसरों को यह ज्ञान मिला। वेदों का ज्ञान गुरु–शिष्य परम्परा से निरन्तर पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को सामने रखते हुए यह स्वीकार करना पडेगा कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ही सिखाने वाला गुरु था।

किसी भी ज्ञान विज्ञान को सीखने सिखाने का माध्यम भाषा ही होती है अत: मनुष्य को वेद का ज्ञान सिखाने के लिए ईश्वर ने भाषा भी सिखाई। यहां भी गुरु शिष्य परम्परा का होना अनिवार्य लगता है और नए शब्द भी गढ़ने लगता है इसी प्रकार भाषा का विकास, परिवर्धन और परिवर्तन होता है और भाषा नया रूप धारण कर लेती है, यथा देव वाणी (संस्कृत) से अपभ्रंस हमारा आरम्भिक गुरु परमात्मा ही है। योगदर्शनकार पतंजलि ने कहा है–

"पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेतदात्" अर्थात् नित्य वर्तमान रहने के कारण वह परमात्मा ही हमारे पुरखाओं का भी गुरु है।

विकासवाद के सिद्धान्त को मानने वाले ईश्वर द्वारा भाषा के सिखाये जाने की बात नहीं मानते हैं। मनुष्य का बालक माता–पिता आदि गुरुजनों के सम्मान में भाषा नहीं सीख सकता यह प्राचीन काल में प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है। इतिहास में असीरिया के राजा असुरवाणी पाल और भारत सम्राट अकबर आदि ने इस विषय में परीक्षण किये थे। छोटे बालकों को एकान्त में रख दिया तथा अन्य वस्तुएं चुपचाप दे दी जाती थी। इस प्रकार परीक्षण दस–दस बारह–बारह साल तक के बालकों पर चलते रहे। वे कोई भी भाषा नहीं सीख पाये क्योंकि उन्होंने किसी को बोलते देखा या सुना ही नहीं था। वे केवल भेड़िए की भांति गुर्राना जानते थे।

विकास वादियों के अनुसार मानव ने जो कुछ अर्जित किया होता है वह संस्कारों के माध्यम से अगली पीढ़ी में संक्रमित हो जाता है यह सिद्धान्त भाषा के सम्बंध में लागू नहीं होता। इसके अनुसार तो अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, आदि बोलने वालों के बच्चों को जन्म से ही वह भाषा बोलनी चाहिए परन्तु ऐसा नहीं है। यदि अंग्रेज बालक को जर्मन भाषा भाषी परिवार में रख दिया जाये तो वह अवश्य सफलता मिलेगी और ऐसे में समाधिस्थ हो जाने पर आत्मज्ञान और ब्रहमज्ञान की प्राप्ति होती है। यह कोई बताने की वस्तु नहीं अनुभव करने की है। जीवन का चरम बिन्दु और उच्चतम लक्ष्य यही है। इसे जानने सुनने के स्थान पर स्वयं करने की इच्छा रखनी चाहिए।

याद रखें! अपने एक–एक क्षण को प्रभु प्राप्ति के साधनों में लगायें। समय बहुत कम है, देरी न करे। अभी इसी समय साधना में लग जायें। कल कभी आयेगा भी कि नहीं, कल का भरोसा न करे। साधक वही है जो चौबीस घंटे सावधान रहता है।

कभी भी साधना का अभिमान न आने दें। हर पल सावधान रहे।

परमात्मा करें कि हम साधना में बुद्धिमता और रचनात्मक विधि एवं तन्मयता से लग जायें वानप्रस्थ जीवन को सार्थक और धन्य कर लें।

"दूर है मन्जिले मकसूद मगर है तो सही।
इज़मे सफर पैदा कर राह कट जाएगी।।

संसार में दो प्रकार के व्यक्ति हैं। एक– जो दूसरों का नाम याद रखते हैं। दूसरे– जिनका नाम दूसरे याद रखते हैं। पसंद आपकी, आप इन दोनों में से कौन बनेंगे?

सदाचार महिमा

-स्व० यशपाल आर्यबंधु

युग-युग से वैदिक ऋषिगण सदाचार की महिमा बखानते चले आये है। सम्पूर्ण मानव समुदाय सदा सदाचार का सम्मान एवं दुराचार तथा भ्रष्टाचार का तिरस्कार करता आया है। वस्तुत: सदाचार मानवता का आभूषण है, उसका सार सर्वस्व है उसकी अलौकिक पूजा तथा दिव्य सुगन्धि है। आचार परम धर्म है और आचारहीन पशुभि: समान: के अनुसार आचरण विहीन व्यक्ति पशु के समान है। दु:ख है भौतिकता की चकाचौंध में आज मानव अपनी इस दिव्य सम्पदा को खो चुका है परिणामस्वरूप आज सर्वत्र दुराचार और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। धर्म को धर्मनिरपेक्षता ले उड़ी है और नैतिकता राजनीति की भेंट चढ़ गई है और स्थिति यह है कि नैतिकता नाता तोड़ भागी है, न जाने कहां?

मानवता हाय! आज फूट-फूट रोती है। भौतिकता प्रधान विज्ञान के इस युग में मानवता पर सबसे बड़ा संकट वस्तुत: सभी कुछ हो रहा है इस तरक्की के जमाने में।

मगर यह क्या गजब है, आदमी इन्सान नहीं बनता।

स्थिति तब और भी भयावह हो जाती है जब हम देखते हैं कि मानव इस संकट के प्रति सर्वथा उदासीन दिखाई देता है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि सदाचार को पुन: प्रतिष्ठित किया जाये। यदि ऐसा नहीं किया गया तो सामाजिक पतन को कोई रोक नहीं सकेगा। आइये सदाचार को समझें और समझकर उसको पूर्ण निष्ठा के साथ अपनाये।

सदाचार क्या है? सदाचार दो शब्दों के मेल से बना है- सद+आचार= सदाचार। तात्पर्य यह है कि श्रेष्ठ आचरण ही सदाचार है।

श्रेष्ठ आचरण तब तक सम्भव नहीं जब तक विचारों में श्रेष्ठता नहीं आयेगी। श्रेष्ठ विचारों को आचरण में उतारना ही सदाचार है, सद्विचार जब आचरण में ढ़लता है तो सदाचार संज्ञा पाता है।

स्पष्ट है कि सदाचार के मूल में सद्विचारों की महती भूमिका है। फिर भी यदि विचार तो श्रेष्ठ हो पर उनकी परिणित कर्म के रूप में न हो तो वे किस काम के?

महत्व तो आचरण का ही है। कहा भी है- **सतां सज्जनानां आचार: सदाचार:।**

अर्थात् सत्पुरुषों सज्जनों का आचरण ही सदाचार है और भी देखे- **'साधुनां च यथावृत्तं एनदाचार लक्षणम्'** अर्थात सज्जनों के समान आचरण करना ही सदाचार का लक्षण है **"महाजनो येन गतः स पंथः"** अर्थात् महापुरुष जिस मार्ग पर चले हैं वही अनुकरणीय पथ है। हमें उसी पथ पर चलना चाहिए और संसार के महान पुरुषों ने अपने पावन चरित्र से मानवता का जो समुज्जवल इतिहास लिखा है, हमें उससे प्रेरणा लेनी चाहिए। महापुरुषों का मर्यादित आचरण हमारे लिये अनुकरणीय है।

हमारे शास्त्रों ने आचार की बड़ी महिमा गाई है यथा- **आचाराल्लभतेह्यायुराचाराल्लभतेश्रियम्, आचाराल्लभते कीर्तिम् आचारः परमं धनम्।** अर्थात् मनुष्य आचार से ही आयु प्रप्त करता है, आचार से सम्पत्ति प्राप्त करता है, आचार से कीर्ति प्राप्त करता है।

आचार ही श्रेष्ठ धन है। तात्पर्य यह है कि सदाचारी व्यक्ति को कीर्ति के पीछे नहीं भागना पड़ता, स्वयं कीर्ति उसके पीछे भागती है। विपरीत इसके जो अपने चरित्र निन्दा का पात्र बनता है। कहा भी है **"दुराचारी हि पुरुषो भवति निन्दितः। दु:ख भागी च सततं व्याधिताल्पायु रेवच॥"** अर्थात् दुराचारी मनुष्य दु:ख का भागी, रोगी तथा अल्पायु वाला होता है। वह

जीवन मिलना भाग्य की बात है। मृत्यु होना समय की बात है।
मृत्यु के बाद भी हम लोगों के मन में जीवित रहें, यह कर्मों की बात है।

सदा दु:खी इसलिए रहता है कि न तो उसे समाज में कोई सम्मान मिलता है न ही उसका कोई विश्वास करता है। इसलिए कहा गया है कि **"वृननयत्नेन संरक्षेद् विन्तय्मायाति याति च। अक्षीणो न्तितः क्षीणो वृन्तस्तु हतोहतः॥** अर्थात् मनुष्य को अपने चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये क्योंकि धन तो आता है और चला जाता है। धन से क्षीण व्यक्ति क्षीण नहीं है परन्तु चरित्र की रक्षा करना परम धर्म तथा मुख्य कर्तव्य बताया है। धर्मचरक पाठ हमें फिर से पढ़ना होगा। यदि हम धरा पर सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं तो हमें सदाचार सुधा का पान करना ही होगा। सदाचारी यदि निर्धन है तो भी हमारे सम्मान का पात्र है और दुराचारी चाहे धनवान है तो भी वह आदर के योग्य नहीं। हम भूल जाते है कि मानव की वास्तविक सम्पदा धन-दौलत नहीं सदाचार है।

सर्वोत्तम विरासत मनुष्य अपनी संतान के लिए भरपूर धन-दौलत तथा कोठी बंगले छोड़ जाता है, पर यह विरासत कोई बढ़िया या श्रेष्ठ विरासत नहीं है। बढ़िया अथवा श्रेष्ठ विरासत तो यह है कि हम अपनी संतान के लिये अपने उज्जवल चरित्र की सम्मति विरासत में दे दी जाये। यदि हम ऐसा कर सके तो धरा स्वर्ग समान हो जायेगी। कविवर मैथिलीशरण गुप्त का यथार्थ कथन है।

सुनो स्वर्ग क्या है? सदाचार है।
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

कतिपय नीति-आख्यान

(विष्णु शर्मा कृत पंचतंत्र से)

अतितृष्णा न कर्तव्या

किसी वन-प्रान्त में एक भील रहा करता था। वह बहुत साहसी, वीर और श्रेष्ठ धनुर्धर था। वह नित्य-प्रति वन्य-प्राणियों का शिकार करता और उससे अपनी आजीविका चलाता तथा परिवार का भरणपोषण करता था। एक दिन जब वह वन में शिकार के लिए गया हुआ था तो उसे काले रंग का एक विशालकाय जंगली सुअर दिखायी दिया। उसे देखकर भील ने धनुष को कान तक खींचकर एक तीक्ष्ण बाण से उस पर प्रहार किया। बाण की चोट से घायल सूअर ने क्रुद्ध हो साक्षात् यमराज के समान उस भील पर बड़े वेग से आक्रमण किया और उसे संभलने का अवसर दिये बिना ही अपने दांतो से उसका पेट फाड़ दिया। भील वही मर कर गिर पड़ा। सूअर भी बाण की चोट से घायल हो गया था, बाण ने उसके मर्मस्थल को वेध दिया था, अतः उसकी भी वहीं मृत्यु हो गयी। इस प्रकार शिकार और शिकारी दोनों भूलुण्ठित हो गये।

उसी समय भूख-प्यास से विकल कोई सियार वहां आया। सुअर और भील दोनों को मृत पड़ा हुआ देखकर वह प्रसन्न मन से सोचने लगा-मेरा भाग्य अनुकूल है, प्रभु की कृपा से मुझे यह भोजन मिला है। अतः मुझे इसका धीरे-धीरे उपभोग करना चाहिए, जिससे यह बहुत समय तक मेरे काम आ सके। ऐसा सोच कर वह पहले धनुष में लगी तांत की बनी डोरी को खाने लगा। उस मूर्ख शृगाल ने भील और सुअर के मांस के स्थान पर तांत की बनी डोरी को खाना शुरू किया। थोड़ी ही देर में तांत की रस्सी कट कर टूट गयी, जिससे धनुष का अग्रभाग वेगपूर्वक उसके मुख के आन्तरिक भाग में टकराया और उसके मस्तक को फोड़कर बाहर निकल गया। इस प्रकार तृष्णा के वशीभूत हुए शृगाल की भयानक और पीड़ादायक मृत्यु हुई।

इसलिए नीतिकारों ने कहा है- **'अति तृष्णा न कर्तव्या'** अर्थात् अधिक तृष्णा नहीं करनी चाहिए।

प्राथमिकताएं निर्धारित करें- निश्चित करें कि, आपके जीवन में सबसे मुख्य क्या है? इसे अपने मन में और एक कागज पर लिख कर रखें।

कोटि तुम्हारा हो वन्दन

-श्री राधेश्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति

गहन तमिस्रा महापंक में डूबा था भारत सारा।
यवन क्रोधस्ताचल में था डूब चुका रवि धर्म हमारा॥
भुला दिया था आर्य जनों ने वेदों का शुचि दिव्यादेश।
वर्णाश्रम की पुण्य व्यवस्था, ऋषियों का पावन संदेश॥
पुण्य धरा पर पड़ा हुआ था, निमर्म बेड़ी का बन्धन ।
दिल दहलाने वाला उठता सदा चतुर्दिक था क्रन्दन॥
विधवा क्या सब अबलाएं? इस पुण्य धरा पर बिलख रही थी।
लाखों गौएं दया-दृष्टि पाने को उत्सुक निरख रही थी॥
हो अनाथ लाखो बच्चे थे मारे इधर-उधर फिरते।
वेदशास्त्र शुचि ग्रन्थ हमारे यवन क्रोध अग्नि में जलते॥
बढ़ा देश था नास्तिक पथ पर पाखण्ड़ो ने घेरा था।
रश्मिरथी के दिव्य देश में चारो ओर अंधेरा था॥
विपन्न समय भारत का था वह, पतन पराज्य की बेला।
दानवता का शंखनाद कर, लगा अनृत्य का था मेला॥
भारतमाता का क्रन्दन यह नहीं सहन तुम कर पाये।
गुर्जर की उस दिव्य धरा पर देव पुरुष तुम थे आये॥
मुरझाई बाटिका देश की तुमने निर्भय हो खींचा।
अतीत की पावन संस्कृति को आगे बढ़कर था खींचा॥
फिर से आर्य जनों को तुमने वेदों का संदेश दिया।
मानवता पथ दर्शक बनकर, हरा भरा यह देश किया॥
जाग उठी भारत की जनता जो सदियों से थी सोई।
निमर्म, क्रन्दन-आडम्बर-मिथ्या आदि सभी खोई॥
हे भारत मां के उद्धारक! है कोटि तुम्हारा अभिनन्दन।
हे आर्य जनों के उद्धारक! है कोटि तुम्हारा ही वन्दन॥

बिना लक्ष्य और योजनाओं के जीवन जीते रहना, ऐसा ही है, जैसे कोई समुद्री जहाज बिना लक्ष्य के ही समुद्र में चल पड़ा हो। उसे भटकना ही है।

ईश्वर कैसे प्राप्त हो?

-स्वामी धर्ममुनि परिव्राजक

इयं ते यज्ञिया तनुः यजु० ।।४/१३।।

तेरा यह शरीर प्रभु दर्शन के लिए है।

किसी एक स्थान से ईश्वरनाथ, द्विजेन्द्र शर्मा, वीरसिंह, धनपतराय और सेवक राम सभी ने मिलकर जगतपुर के मेले की तैयारी की। जगतपुर का मेला कोई साधारण मेला नहीं लगता किन्तु इसके सदृश दूसरा मेला भी नहीं। यहां तक यह प्रसिद्ध है और अनुपमेय है कि इसके लिये दूसरी उपमा ही नहीं। इस मेले में कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो न आती हो और कोई ऐसा दुकानदार नहीं कि जो न आता हो। बड़े-बड़े त्यागी महात्मा साधु लोग भी आते हैं, जिनकी झोंपड़ी पृथक ही लगा करती हैं। इस मेले के मार्ग इतने कठिन हैं कि बड़े-बड़े जानकार भी प्रायः मार्ग भूल जाया करते हैं, फिर न जानने वालों की तो बात ही क्या है। अतः मेले को चलते ही उक्त पाँचों में से ईश्वरनाथ, जो शेष चारों का बड़ा ही मित्र था। यहां तक कि उन चारों ही का प्राण था, मार्ग में छूट गया और ईश्वरनाथ की ओर इन चारों का कुछ ध्यान ही न रहा। यह ऐसे चले कि चारों अपनी धुन में मस्त होकर चले आये। मार्ग चलने से भूख प्यास से इतने व्याकुल थे कि मेले में पहुंचने पर भी प्रथम भोजनादि की चिन्ता करने लगे। वहाँ एक ऊँची दुकान पर जा, जिस पर कि एक स्त्री बैठी थी, चारों ने दुग्ध पान किया मोल लेकर, पुनः पान पत्ता खाकर मेले की विचित्रता देख वह ऐसे फंसे कि बहुत समय तक ईश्वरनाथ का स्मरण न आया क्योंकि सारा द्रव्य तो ईश्वरनाथ ही के पास था। अतः यह चारों ईश्वरनाथ की खोज में लगे। ईश्वरनाथ परम योगी थी, इस कारण मेले में साथ-साथ ही चलते रहे, पर वह इतने तमाशा देखने में लीन थे कि सारा मेला खोजने पर और ईश्वरनाथ के साथ रहने पर भी वह खोजने में असमर्थ रहे क्योंकि उनका ध्यान तो मेले के चटकीले-चमकीले पदार्थों की ओर एवं अन्य कौतुकों की ओर चला जाता था परिणाम यह हुआ कि यह चारों मेले में बहुत भटके, पर ईश्वरनाथ न पाया। अतः यह चारों मेले से निकल एक मकान की एक कोठरी के द्वार पर लेट गये। ईश्वरनाथ पहले से ही उस कोठरी में उपस्थित था, पुनः उन चारों पुरुषों की एक पहुँचे हुए महात्मा से भेंट हुई। उनसे वार्तालाप होने पर ज्ञात हुआ कि ईश्वरनाथ इस कोठरी के भीतर है। यदि यह किसी प्रकार खुल जाय तो ईश्वरनाथ मिल जाय। फिर एक कुल्हाड़ा ले उन वज्रवत कपाटों को काटा। दरवाजों के अलग होते ही उनको अपने परममित्र के दर्शन हुए। बन्धुओं तथा माता-बहिनों यह तो हुआ दृष्टान्त, पर इसका अर्थ यह है कि सम्पूर्ण प्रकृति सुषुप्ति अवस्था में जीवों के स्थित होते हुए जब ईश्वरनाथ ने मेले का इस कथन के अनुसार कि-

''तदेक्षत बहुस्यां प्रजायायेयः''

विचार किया, तब तत्काल ही यह संसार रूप मेला लग गया। इसकी उपमा तथा महानता तो अकथनीय है ही, परन्तु बहुत-बहुत से स्त्री-पुरूष मेला देखने चले और उनमें ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व और सेवा यह चारों शक्तियां विद्यमान थीं। उन्होंने मार्गश्रम जो उठाया, वह गर्भधारणादि का क्लेश है, जिससे बढ़कर अन्य क्लेश नहीं हो सकता, पुनः मेले में पहुँच माया रूपी स्त्री से कर्मरूपी पूंजी द्वारा दुग्ध खरीदकर प्रथम दुग्धपान किया पर ईश्वरनाथ यानी प्रभु का स्मरण इस कथन के अनुसार है कि:

त्रिभिर्गुणमयै भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।

''लोग आपके बारे में क्या सोचते हैं,'' इस बात पर कम ध्यान दें और ''आपको जीवन में क्या करना है'' इस बात पर अधिक ध्यान दें।

माहितं नाभि जानाति भामेभ्य: परमव्ययम्।।

दैवीह्येषागुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेव मे प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ने।।

प्रकृति में फंसकर लोग उस ईश्वर को नहीं जानते और बिना उस प्रभु की कृपा के ही इस प्रकृति से तर सकते हैं, अन्नप्राशन के पश्चात् कुछ और बड़े होने पर जब अन्न और वस्त्रों की आवश्यकता हुई, तब हम जीव उस ईश्वर को याद करते हैं और मेले यानी संसार भर में कहीं पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में उसके ढूंढने के लिये मारे-मारे फिरते हैं। उस समय यदि किसी ऋषि सरीखे महात्मा से भेंट हो जाती है, तो वह बतला देता है कि :-

पातालं न च विवरं गिरीणाम् वैवान्धकारे कुक्षयो नेदधीनाम्।

गुहायस्यां निहतं ब्रह्म शाश्वतं, तं भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा:।।

वह प्रभु न पाताल में, न पहाड़ों की गुफा में, न अन्धकार में,न समुद्र की सतह में, परन्तु हृदय रूप गुफा में ही है, वहीं दर्शन होंगे, यथा-

एको देव: सर्व भूतेषु गूढ: सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्ष: सर्व भूतादिवासा साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च।।

तथा-

य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनो अन्तरो।

यमात्मा नवेद यस्यात्मा शरीरं।।

उस परमात्मा को ऐसी जगह ढूंढो, जहाँ प्रकृति के झंझट न हों। बस यह नियम समझो कि स्थूल के अन्दर सूक्ष्म प्रवेश कर सकता है, पर सूक्ष्म के अन्दर स्थूल नहीं। अत: प्रकृति सबसे सूक्ष्म नहीं। उससे सूक्ष्म जीवात्मा और उससे सूक्ष्म परमात्मा है। इस कारण जीवात्मा तो प्रकृति में प्रवेश कर सकता है, पर जीवात्मा के अन्दर प्रकृति प्रवेश नहीं कर सकती है। बस वहाँ तो केवल एक शुद्ध ब्रह्म ही स्थित है।

दिल के आयने में है तसवीर यार की।

जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।।

याद रखें

जिन्दगी धन और सत्ता के संचय का नाम नहीं है बल्कि आशीर्वादों के मोतियों को एकत्र करने का नाम है। जहाँ धन और सत्ता की प्राप्ति के लिए शोषण और जुल्म अनिवार्य है वहाँ आशीर्वादों के मोती बटोरने के लिए किसी को पीड़ित करने की नहीं बल्कि दूसरों की पीड़ा हरने की जरूरत रहती है।

सच्चा सुख अन्नत इच्छाओं की पूर्ति के पीछे भागने का नाम नहीं है (जो कि मृगतृष्णा मात्र है) बल्कि जीवन में सादगी और संतोष अपनाने का नाम है।

सच्चा धर्म दिखावे और आडम्बर का नाम नहीं है बल्कि मानव सेवा और त्याग-भावना द्वारा दीन-दुखियों के आंसू पोंछने और प्यार बाँटने का नाम है।

आपके जीवन में आपने 'कितने वर्ष जिया', यह महत्वपूर्ण नहीं है।
महत्वपूर्ण तो यह है कि, 'आपके जिए वर्षों में जीवन कितना है।'

वैदिक गृहस्थ आश्रम
''गृहा मा विभीत''

-स्व० रामप्रसाद वेदालंकार

गृहस्थाश्रम के पावन उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्यों से डरो मत, वरन् उनका निष्ठावान् बनकर सदा पालन करो, फिर देखो कि तुम्हारा 'गृहस्थाश्रम' स्वर्गाश्रम बनता है या नहीं।

महर्षि दयानन्द के अनुसार 'गृहस्थाश्रम'- जो ऐहिक और पारलैकिक सुख प्राप्ति के लिये विवाह करके अपनी शक्ति के अनुसार परोपकार करना, नियत समय पर यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना, सत्यधर्म में ही अपना तन, मन, धन लगाना एवं धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करना इत्यादि, इसी का नाम गृहस्थाश्रम है।

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्या यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताऽददात्।।

अथर्व 12-1-6, ऋग्वेद 10-85-9।।

(सोमः वधूयुः अश्विना अभवत्) सुकुमार वीर्ययुक्त, शान्ति आदि शुभ गुणयुक्त, हृदय से वधू की कामना करने हारा पति तथा भीतर से पति की कामना करने हारी वधू (अश्विना-अश्विनौ) दोनों में से प्रत्येक ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या सुशिक्षा को प्राप्त किये हुए होवें। और (उभा वरा आस्ताम्) दोनों वरणीय, श्रेष्ठ और समान गुण कर्म स्वभाव वाले होवें। (यत् पत्ये मनसा शंसन्तीं सूर्याम्) जो पति के लिये मन से कामना करने हारी वा उसका गुणगान करने वाली सूर्या-सूर्य की रश्मि के तुल्य ब्रह्मचर्य के कारण तेज और सौन्दर्य से युक्त वधू है, उसको पुरुष और इसी प्रकार पुरुष को स्त्री (सविता अददात्) सकल जगत् का रचयिता परमेश्वर प्रदान करता है।

उपर्युक्त मन्त्र से यह ज्ञात होता है कि जो 'सोमः' होता है, ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन कर विद्या-सुशिक्षा आदि उत्तम गुणों से अपने आपको सम्पन्न कर लेता है, जो 'सोम' अर्थात् चन्द्रमा के तुल्य शान्त और गम्भीर हो जाता है, तो उसके जीवन में स्वाभाविक रूप से उचित समय आने पर एक अभिलाषा उत्पन्न होती है। वह यह कि वह अपने लिये एक ऐसे जीवन साथी का चयन करे जो जीवन में सबसे ज्यादा उसका निकटतम साथी हो, उसका अन्तरतम साथी हो, जिसको कि वह भीतर-बाहर से निश्छल स्नेह दे सके। जिसको वह अपने जीवन का अभिन्न अंग मानकर स्वयं उसके प्रति समर्पित हो सके और जो उसको अपने जीवन का अभिन्न अंग मानकर उसके प्रति पूर्णतया समर्पित हो सके। जो देखने, सुनने और कहने को तो भले ही अपने से भिन्न हो, पर वास्तव में वह हृदय से उससे अभिन्न हो-एक हो। तात्पर्य यह है कि वह ''वधूयुः'' हृदय से वधू की कामना करने लगता है। ऐसे समय में तब वह अकेला नहीं रहना चाहता वरन् उस जीवन साथी के साथ ही सदा एक होकर रहना चाहता है। एक होकर भी ऐसा कि फिर उसको अपने और उसके मध्य में कोई व्यवधान सह्य नहीं होता। तब वह उसी की मूर्ति को सदा अपने हृदय में अपने सम्मुख बनाये रखना चाहता है। ऐसे समय तब वह स्वयं व उसके अभिभावक उसकी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये सक्रिय हो जाते हैं।

ठीक ऐसे ही कन्या के जीवन में भी एक ऐसी अवस्था आती है जबकि वह ब्रह्मचर्य का पालन कर

जो कभी निराश नहीं होता, वह आशा को कभी नहीं खोता।
जो पुरूषार्थ पर जीना जानता है, वह किस्मत पर कभी नहीं रोता। शान से जिएं।

विद्या-सुशिक्षा आदि सद्गुणों से अपने को अलंकृत कर तेज और सौन्दर्य से युक्त हो जाती है। उसमें भी तब सृष्टि के नियमानुसार सहज ही यह हार्दिक अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है कि उसे भी अपने लिये एक ऐसा जीवन साथी मिले कि जिसके प्रति वह पूर्णतया समर्पित होकर भीतर-बाहर से उसे वह अपना सब प्रकार का स्नेह-सम्मान दे सके, और उससे भी वह अनूठा स्नेह-सम्मान पा सके। हृदय में इस अभिलाषा के उत्पन्न होते ही परिवार के प्रबुद्ध व्यक्ति उसकी हार्दिक चाहना के अनुरूप सजग हो जाते हैं और तब घर-परिवार में उसके विवाह की चर्चा प्रारम्भ हो जाती है। यह सब देख व सुनकर उसको प्रसन्नता होती है। उसको तब इस प्रकार की सब चर्चाओं से भीतर ही भीतर तृप्ति मिलती रहती है क्योंकि यह सब कुछ उसके हृदय की चाहना के अनुरूप ही तो होता है। ऐसी परिस्थिति में वह व उसके अभिभावक तब सहज ही प्रयत्न करते हैं कि वरणीय-श्रेष्ठ एवं समान गुण कर्म स्वभाव वालों का वे विवाह कर देवें। उन अभिभावकों के इस पुरूषार्थ में सब जगत् का विधाता प्रभु उनके कर्मानुसार सहयोग प्रदान कर वर को वधू और वधू को वर-नर को नारी और नारी को नर-पति को पत्नी और पत्नी को पति प्रदान कर देता है। तब वे वर-वधू, नर-नारी, पति-पत्नी एक होकर दम्पत्ति बन जाते हैं।

इस प्रकार दाम्पत्य जीवन में प्रविष्ट होने के उपरान्त वर-वधू का, नर-नारी का, दम्पत्ति का यह कर्तव्य है कि वे दोनों मिलकर (दम इति गृहनाम, तस्य पती-रक्षकौ इति दम्पत्ति) इस गृह के अर्थात् अपने घर-परिवार के सच्चे रक्षक बनकर उसकी सब प्रकार से रक्षा करें।

आवश्यक सूचनायें

(1) अब पवमान पत्रिका वेबसाइट www.vaidicsadhanashramdehradun पर भी उपलब्ध है।

(2) योगाचार्य डॉ. विनोद कुमार शर्मा जी के मार्गदर्शन में वैदिक साधन आश्रम तपोवन नालापानी देहरादून द्वारा ग्राम मंगलूवाल में नालापानी खलंगा रोड स्थित तपोभूमि में दिनांक 13 अक्टूबर से 20 अक्टूबर 2014 तक कायाकल्प शिविर का आयोजन किया जा रहा है।

पुरानी कब्ज, ऑव, गैस, मोटापा, जोड़ों के दर्द, शुगर, हृदय रोग, ब्लड प्रैशर, जुकाम, खाँसी, दमा, मिरगी के दौरे, चर्म रोग, महिलाओं की सभी समस्याओं का योग, आसन, प्राणायाम, प्राकृतिक उपचार मिट्टी, पानी, धूप, न शुद्धि क्रियाओं के द्वारा सम्पूर्ण शरीर का काया कल्प किया जायेगा। शिविर में यथाआवश्यक भोजन एवं आवास की उचित व्यवस्था है चिकित्सा शुल्क मात्र 2000 रूपये तथा अनावासीय व्यक्ति शुल्क 1000 रूपए हैं। रोगी व्यक्ति अपने साथ दो तोलिये, एक छोटा, एक बडा गिलास, एक चम्मच एक चादर व एक कम्बल भी साथ लायें। सम्पर्क सूत्र-9319317007, 9412051586, www.arogyadashram.com
Email nirogbharat@gmail.com www.vaidicsadhanashramdehradun

हर दिन 'नया जन्म' समझें। सुबह उठने पर ऐसा लगना चाहिए, कि भगवान ने सुख प्राप्ति के लिए आज कितना अच्छा अवसर दिया है।

'राष्ट्र भक्ति की पराकाष्ठा'

भारत में अंग्रेजी शासन काल में स्वतन्त्रता आन्दोलन को उग्र बनाने व असेम्बली में बम फेंकने के अपराध में भगत सिंह राजगुरू व सुखदेव, इन तीन क्रान्तिकारियों को फांसी की सजा सुनाई जा चुकी थी। उनके एक प्रिय साथी श्री विजय कुमार के माध्यम से प्रिवी-काउंसिल में माफी नामा के लिये एक अपील पत्र भेजा गया। पं. मोतीलाल नेहरू ने भी अंग्रेज सरकार को लिखा कि इनकी उस अपील पर विचार किया जाये। सरकार का फैसला बदलने के लिये उस पर दबाव बनाया जाने लगा। जब इन तीनों राष्ट्र भक्तों तक यह जानकारी पहुंची तो इन्होंने इस पर विचार किया और सोचा कि कहीं यह फैसला बदल न जाए। अंग्रेज चालबाज हैं। जब तक हम देशभक्त क्रान्तिकारियों का बलिदान न होगा, तब तक स्वतन्त्रता आन्दोलन का देशव्यापी प्रचार न होगा। क्षमा दान की अपील हमारे देश के साथ विश्वासघात होगा। हमारी फांसी से लाखों भारतीयों की आत्मा जाग जायेगी। यह सोच कर इन क्रान्तिकारियों ने यह निर्णय किया कि हम अपने प्रिय देश भारत के लिये अपने जीवनों का बलिदान करेगें। हम माफी मांग कर फांसी नहीं रूकवायेगें। उन्होंने निश्चय करके कहा कि उन्हें फांसी अवश्य दी जाए।

'मां का रूप'

सरदार भगत सिंह से फांसी के फन्दे को चूमने से पूर्व उनकी अन्तिम इच्छा पूछी गयी। उन्होंने कहा कि मैं अपनी माता के चरण स्पर्श करना चाहता हूं। अज्ञात स्थान होने के कारण जेल के अधिकारियों ने अपनी असमर्थता प्रकट की और कहा कि इस समय यह सम्भव नहीं था। संस्कारवान् व राष्ट्र भक्त वीर भगत सिंह ने उसका समाधान निकाल लिया और कहा कि मेरी माता ने मुझे जन्म दिया था और बचपन में मेरा पाखाना साफ किया करती थी किन्तु उससे भी बड़ी मां जेल की महिला सफाई कर्मचारी है जो अब नित्य मेरा पाखाना साफ करती है। अतः मुझे पैदा करने वाली मां से भी बड़ी यह मां है और महान है। उन्होंने अन्तिम समय में जेल की महिला सफाई कर्मचारी के पैर छुए और मां की तरह आशीर्वाद लिया। धन्य है वह मां जिसने वीर भगत सिंह जैसे सपूत को जन्म दिया और वह मां भी जिसके चरण इस वीर ने अन्तिम घड़ियों में छुए।

संकलनकर्ता -पं. उम्मेदसिंह विशारद

अत्यावश्यक सूचना

सुविज्ञ पाठकों को विदित हो कि पवमान पत्रिका प्रत्येक मास की 20 तारीख को डाक द्वारा प्रेषित की जाती है। यदि पत्रिका आपको उस माह के अन्तिम दिन तक प्राप्त न हो तो उसकी सूचना निम्न दूरभाष नम्बरों पर अथवा पत्र द्वारा भेज दें। पत्रिका पुनः आपकी सेवा से भेज दी जायेगी। यदि आप अपनी पत्रिका कोरियर से मांगना चाहते है तो लिखित रूप में सूचित करें कि कोरियर पर होने वाला व्यय आप वहन करेंगे।

धन्यवाद

श्री बृजेश गर्ग, मो.: 09410315022
श्री प्रेम प्रकाश जी, मो.: 09412051586
कार्यालय-फोन- 0135-2787001

यदि हर व्यक्ति आपसे प्रसन्न है, तो इसका सीधा सा अर्थ है कि 'आपने अपने जीवन में अवश्य ही अनेक समझौते किए हैं।' सबको तो ईश्वर भी प्रसन्न नहीं कर सकता।

वैदिक साधन आश्रम तपोवन देहरादून की गतिविधियाँ एवं भावी कार्यक्रम

-श्री प्रेम प्रकाश शर्मा, सचिव

प्रिय बन्धुओं!

आप भली भांति अवगत होंगे कि वैदिक साधन आश्रम तपोवन देहरादून में लगभग पूरे वर्ष योग शिविर, प्राकृतिक चिकित्सा शिविर, चतुर्वेद पारायण यज्ञ, गायत्री यज्ञ, एवं विशेष यज्ञों का आयोजन किया जाता है। जून एवं जुलाई माह मे 18 जून से 2 जुलाई 2014 तक प्राकृतिक चिकित्सा शिविर का आयोजन किया गया जिसमे योग्य चिकित्सकों द्वारा रेकी, सुजोक, तथा एक्यूप्रेशर, पद्धति से रोगियों का इलाज किया गया। तत्पश्चात् 25 जून से 1 जुलाई तक योगाचार्य डॉ० विनोद कुमार शर्मा जी के मार्गदर्शन से तपोभूमि में **'काया-कल्प शिविर'** का आयोजन हुआ जिसमे योगासान, प्राणायाम, ध्यान का अभ्यास कराया गया तथा मिट्टी, पानी, धूप से शुद्धि क्रियाओ द्वारा रोगो का सफल उपचार किया गया। काया-कल्प शिविर आवासीय था। देश के सुदूर स्थानों से आकर भाई-बहिनों ने शिविर में पूर्ण लाभ प्राप्त किया। आगामी महीनों में 8 अक्टूबर से 12 अक्टूबर 2014 तक शरदुत्सव का आयोजन किया जा रहा है। 13 अक्टूबर से 20 अक्टूबर तक तपोभूमि मे आवासीय काया कल्प शिविर आयोजित किया जायेगा जिसमे देहरादून शहर के भाई बहिन प्रातः सायं घर से आकर भी इलाज करा सकते हैं। 1 नवम्बर से 9 नवम्बर 2014 तक आचार्य आशीष जी द्वारा प्रथम स्तर का योग शिविर आयोजित किया जायेगा। इन शिविरों के संबंध मे आश्रम कार्यालय के दूरभाष पर विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते है। रजिस्ट्रेशन हेतु 15 अक्टूबर 2014 के उपरान्त आचार्य आशीष जी के दूरभाष नं- 09410506701 पर सम्पर्क कर सकते है।

विदित है कि कुछ आर्य सज्जनों के उत्साहवर्धन के फलस्वरूप आश्रम सोसाइटी ने तपोवन आरोग्यधाम (चिकित्सालय) तथा महात्मा प्रभु आश्रित जी सत्संग भवन का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया है। दोनों भवनों की छत डाली जा चुकी है और दीवारें भी खड़ी हो गई हैं। अब इन भवनों का प्लास्टर, फ्लोरिंग टाइल्स, सैनेटरी, सीवरेज कार्य, विद्युतीकरण तथा खिड़की/दरवाजे, आदि के कार्य शेष है। यह निर्माण कार्य भी हमे और आपको मिलकर पूर्ण करना है। इन भवनों के निर्माण कार्यो पर अभी तक लगभग 80 लाख रूपये व्यय हो चुका है तथा अवशेष कार्यो एवं फर्निशिंग आदि पर लगभग 150 लाख रूपये व्यय होगा। आइये संकल्प करें कि अपनी पवित्र कमाई मे से दान करके शीघ्र इन दोनो भवनो का निर्माण पूर्ण करायेंगे।

सूचना

आँखों का निःशुल्क ऑप्रेशन

वैदिक साधनआश्रम तपोवन नालापानी देहरादून के अध्यक्ष श्री दर्शन कुमार अग्निहोत्री जी द्वारा वांछित व्यक्तियों के कैटरैक्ट के आपरेशन निर्मल आई इन्स्टीट्यूट ऋषिकेश में कराये जा रहे हैं। जो व्यक्ति नेत्र रोग से पीड़ित हैं और जिनका कैटरैक्ट का आपरेशन धनाभाव के कारण नहीं हो पा रहा है वह आश्रम के दूरभाष न. 0135-2787001 पर वार्ता करके अपना रजिस्ट्रेशन करवा लें ताकि उपयुक्त दिवस पर आपका कैटरैक्ट का आपरेशन निःशुल्क कराया जा सके। अधिक जानकारी के लिए आश्रम के सचिव से मो. 09412051586 पर सम्पर्क कर सकते हैं।

सफल व्यक्ति उत्तम फल की नहीं उत्तम आरम्भ की योजना बनाते हैं।
आरम्भ उत्तम होने पर, उत्तम फल तो स्वयं ही मिल जाता है।

अवशेष कार्यों का विवरण एवं लागत मूल्य निम्नवत हैं :-

Details of Works Required to be Done for Completion of Arogayadham and Satsang Bhawan at Vaidic Sadhan Ashram Tapovan, Nalapani, Dehradun

A. Sanitary & water supply, sever, Manholes, septic tank and soak pits etc.
B. Terracing of both buildings.
C. Raising of staircase, covering R.C.C. of office area, stair case etc.
D. Electrification of both buildings and their furnishing.
E. Providing Medical equipments in Hospital.

S. No.	ITEM	AROGAYADHAM	SATSANG BHAWAN
1.	Water supply Sanitary, and septic tank etc	7.00 lac	6.00 lac
2.	Terracing	5.00 lac	4,00 lac
3.	RCC slab of office and other areas	2.00 lac	5.00 lac
4.	Inside & outside plaster	4.00 lac	4.00 lac
5	Steel work railing of stairs	0.15 lac	0.20 lac
6.	Kota stone flooring	1.00 lac	0.60 lac
7.	Tiles for flooring	5.00 lac	3.60 lac
8.	Door & window (AL)	1.85 lac	1.60 lac
9.	Door & window steel	5.00 lac	2.50 lac
10.	C.C work for flooring, and painting etc	5.00 lac	4.00 lac
11.	Electricity work	4.00 lac	3.00 lac
12.	Road work & pavements	2.50 lac	4.00 lac
13.	Acoustics and sound system	-	12.00 lac
14.	Interiors and furnishing including Air Conditioning	30.00 lac	15.00 lac
15.	Medical equipments	12.00 lac	-
	G.T	**84.50 lac**	**65.50 lac**

सभी धर्माभिलाषी, आर्य परिवारों एवं आश्रम के शुभ चिन्तकों से पूर्ण सहयोग निमित्त सादर अनुरोध है। आश्रम को दिया गया दान आयुक्त देहरादून के आदेश संख्या सी.नं. 10(53)/कर मुक्ति/देहरादून/ 2010–11/ तक/ 6029 दिनांक 1.1.2010 के द्वारा सदैव के लिये आयकर की धारा 80जी के अधीन कर मुक्त है। तपोवन आश्रम पैन नं० AAAAV1656L तथा दान राशि निम्न बैंक खाते में जमा करायी जा सकती है।

वैदिक साधन आश्रम, देहरादून (ओ.बी.सी.खाता सं.: 00022010029560)
एवं IFC Code-ORBC0100002

बैंक में राशि जमा कराने के पश्चात् आश्रम को तुरन्त ई–मेल (vaidicsadanashram88@gmail.com) द्वारा सूचित करने पर रसीद भेज दी जायेगी।

मन में इच्छा तीव्र हो, बुद्धि पवित्र हो, शरीर से पूरी ताकत लगाएं, तो सफलता निश्चित है। बिना इसके, सफलता की आशा नहीं रखनी चाहिये।

आजमाए तो जीवन स्वर्ग बन जाए

–डा० अजीत मेहता

१. यदि आप अपने माता-पिता का आदर करेंगे तो आपके बच्चे भी आपका आदर करना सीखेंगे।

२. दूसरे मनुष्यों से जैसा व्यवहार आप अपने लिए पसन्द करते है वैसा ही व्यवहार यदि आप दूसरों के साथ करे तो आपका जीवन बदलकर स्वर्ग बन सकता है। सामने वाले के स्थान पर अपने को रखकर जरा सोचने की आदत डालें यानि "मैं उसकी जगह होता तो क्या करता" तो बहतु सी विकट समस्याओं का समाधान स्वत: ही मिल जाएगा और साथ ही अनावश्यक तनाव से मुक्ति भी।

३. किसी को भी बिना मांगे और अनावश्यक सलाह देने और बात बात पर टोकने की आदत त्याग दें। इस तरीके से किसी व्यक्ति, चाहे बच्चा हो या बड़ा, में सुधार लाने की आशा करना व्यर्थ है। प्रकृति, सत्संगति, महापुरुषों का जीवन और श्रेष्ठ लेखकों की प्रेरणादायक पुस्तकें ही वास्तविक प्रेरणा स्रोत है, जीवन में सुधार लाने के लिए।

४. जैसा मधुर व्यवहार विवाह से पहले प्रेमी-प्रेमिका के मध्य देखा जाता है वैसा ही प्रेमी-प्रेमिकावत् व्यवहार, एक-दूसरे को समझने की भावना और परस्पर तालमेल का विवाह के बाद जीवन में स्थान दिया जाय तो पति-पत्नी का वैवाहिक जीवन वास्तव में आनन्ददायक बन सकता है। फिर भला दाम्पत्य-जीवन में कटुता और क्लेश को स्थान कहाँ!

५. 'क्या खाते है' इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि खाये हुए आहार को ठीक से पचाना। अत: जो आहार आप ठीक से पचा न सके या जो खाद्य पदार्थ आपको अनुकूल न आता हो (Diet which does not suit you) उसका सेवन त्याग देना चाहिए। इसी प्रकार क्या कमाते हैं? इससे अधिक महत्वपूर्ण है आपको अपनी आय को विवेक और बुद्धिमत्ता से खर्च करना आना।

६. दूसरों की बढ़ोत्तरी से अपना मिलान या कम्पेरिजन करके दु:खी मत होइए और न ही व्यर्थ की प्रतिस्पर्धा में उतरकर होश खोइए। प्रतिस्पर्धा का कहीं अन्त नहीं है ईर्ष्या एवं दूसरों को सुखी देखकर दु:खी होने का स्वभाव मानसिक तनाव और अनेकानेक रोगों का कारण बनता है जबकि दूसरों को सुखी देखकर आनन्दित होने का मजा अपने आप में किसी स्वर्गिक सुख से कम नहीं है।

अपने जीवन रूपी 'आधी भरी, आधी खाली गिलास' के आधे खाली भाग को देख देखकर और अपनी उपलब्धियों को नजरअंदाज करके व्यर्थ में दुखी मत होइए। 'जो पास में नहीं है' उसे देखकर निराश होने की बजाय 'जो पास में है' उसे देखकर आप सदा आशावादिता के साथ खुशियाँ बटोरिए। सदा सकारात्मक दृष्किोण (Positive Thinking) अपनाइए। 'जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि'।

इस सृष्टि में सभी समान नहीं हो सकते। यहाँ तक एक ही माँ की कोख से उत्पन्न भाई-बहन में भी प्रत्येक का अपना एक अलग व्यक्तित्व है। यह भेद जन्म-जन्मान्तर के शुभाशुभ कर्मों का प्रतिफल है। कर्मवाद सदकर्मों की प्रेरणा देता है और सप्त-व्यसनों से बचाता है। जैसा कोई कर्म करेगा वैसा ही उसे फल मिलेगा। अच्छे कर्मों के द्वारा इस जीवन और अगले जन्म को निखारना आपके अपने हाथ में है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने फल की कामना किए बिना, अच्छे कर्म करने की प्रेरणा दी है:

'कमण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्'

इस मर्म को समझने के बाद बहुत से मानसिक तनावों से सहज ही मुक्ति मिल जाती है और कर्तव्य परायणता का पथ प्रशस्त हो जाता है।

७. 'सादा जीवन, उच्च विचार' के अपनाने से जहाँ

यह जीवन स्वाभाविक रूप से जीकर उन्नति करने के लिए मिला है, किसी को झूठा प्रभावित करने के लिए नहीं। स्वाभाविक जीवन जिएं, नकली नहीं। आत्म-संतुष्टि के लिए जियें।

आत्मा चमकती हैं वहाँ फैशनपरस्ती और कुत्सित विचारों से आत्मा मलीन होती है। हमारी संस्कृति आत्मोन्मुखी होने से आत्मा-प्रधान है। यहाँ व्यक्ति के चरित्र और गुणों की पूजा होती है, शरीर और शरीर पर धारण किए गए वस्त्र-आषूषणों या उनके नकल (फैशन) की नहीं।

आवश्यकताओं को कम करने में ही सच्चा सुख छिपा है। चाह घटाने से चिन्ताओं से मुक्ति मिलती है। किसी ने सच कहा है-

चाह गई, चिन्ता मिटी, मनुवा बेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिए, वह है शहंशाह।।

८. सभी धर्म, देवी-देवता, आस्थाएं पूजा पद्धतियों का हमें सम्मान करना चाहिए क्योंकि ये सब केवल माध्यम अथवा मार्ग हैं- एकमात्र लक्ष्य परमात्मा तक पहुँचने के लिए। जिस प्रकार अनेक नदियों और जल-धाराओं के जल का एकमात्र लक्ष्य आगे जाकर अन्त में विशाल सागर में विलीन होकर उस सागर से एकाकार हो जाना है, उसी प्रकार समस्त धर्मा, देवी-देवता, आस्थाएं और उनसे जुड़ी पूजा-पद्धतियों के उपासक का अन्तिम लक्ष्य भी आगे जाकर अन्त में परमात्मा-प्राप्ति या आत्मा का विराट् परमात्मा में लीन होकर परमात्मा से एकाकार हो जाना ही है। '**सर्वधर्मसम्मानभाव**' की इतनी सी बात ठीक से समझकर जीवन में आचरण में लाई जाये तो साम्प्रदायिकता को नामोनिशान न रहेगा और इन्सानियत जागेगी जिससे हमारा जीवन स्वर्ग बन जाएगा।

९. किसी भी भारतीय को किसी के आगे नतमस्तक होने की जरूरत नहीं है क्योंकि हमारी संस्कृति महान् है जो कि राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, गुरुनानक जैसे धर्मनायकों द्वारा स्थापित महान् मानवीय मूल्यों और आदर्शो यथा- 'सादा जीवन, उच्च विचार,' ब्रह्मचर्य, शाकाहार, सर्वधर्मसम्मानभाव, सभी देवी-देवताओं के प्रति सम्मान, नारी के प्रति सम्मान, माता-पिता-बुजुर्गो के प्रति सम्मान, सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा की भावना, क्षमा, करुणा, सत्य, अस्तेय, समन्वयवाद, कर्मवाद, सन्तोष, दान, शील, तप, त्याग, समर्पण, प्रेम, भाईचारा पर आधारित है और जो सर्वधर्म सहिष्णुता, अनेकता में एकता, सह-अस्तित्व, 'जीओ और जीने दो' और 'वसुधैव कुटुम्बकम का सन्देश देती है। आज विरासत में मिली मानवीय मूल्यों की ऊँचाई को छूने वाली इसी संस्कृति के कारण हमारा सिर सदैव ऊँचा रहा है और इसी से हमारा देश भारत महान् है। भारत के सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करना और उन्हें जीवन में उतारना हमारा परम धर्म है।

रचनाएं आमंत्रित हैं

रचना, पत्रिका के उद्‌देश्य को ध्यान में रखते हुए संक्षिप्त, सुस्पष्ट और समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के उद्‌देश्य को ध्यान में रख कर लिखी गयी हो। वेद, उपनिषद, दर्शन, ब्राह्मण ग्रन्थ, सूत्र ग्रन्थ, महापुरुषों की जीवनी आदि के आधार पर 500 से 1500 शब्दों की रचनाएं -लेख, कविता, प्रसंग, जीवनियां आदि अपनी मूल रचनाएं टाइप कराकर या स्पष्ट अक्षरों में स्वहस्त लिखित सम्पादक के नाम से निम्न पते पर क्रुतिदेव 10 / कुन्डली हिन्दी फान्ट में ई-मेल से भेजने का कष्ट करें। रचना को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार सम्पादक का है। संस्था की वित्तीय सीमाओं के कारण कोई पारिश्रमिक देना सम्भव नहीं होगा।

कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री
पोस्ट बैग सं०- 67 जी०पी०ओ० देहरादून-248001
Email : kkvaidik@gmail.com

'अपनी इच्छा' से जिएं, 'दुनिया की इच्छा' से नहीं। आपका जन्म जीने के लिए हुआ है, न कि आप इसलिए जी रहे हैं क्योंकि आपका जन्म हुआ है।

शुभकामनाओं सहित-

सामान्य रोगों के सुगम इलाज

1. स्मरण शक्ति की कमजोरी (Weak Memory)

सात दाने बादाम गिरी सायंकाल किसी कांच के बर्तन में जल में भिगो दें। प्रातः उनका लाल छिलका उतारकर बारीक पीस लें। यदि आँखे कमजोर हो तो साथ ही चार काली मिर्च पीस लें। इसे उबलते हुए २५० ग्राम दूध में मिलाएँ। जब तीन ऊफान आ जायें तो नीचे उतारकर एक चम्मच देशी घी और दो चम्मच बूरा (या चीनी) डाल कर ठंडा करें। पीने लायक गर्म रह जाने पर इसे आवश्यकतानुसार पन्द्रह दिन से चालीस दिन तक लें। यह दूध मस्तिष्क और स्मरण शक्ति की कमजोरी दूर करने के लिए अति उत्तम होने के साथ वीर्य बलबर्धक है।

विशेष- (१) यह बादाम का दूध सर्दियो में विशेष लार्भप्रद है और दिमागी मेहनत करने वाले एवं विद्यार्थियो के लिए अत्यन्त उपयोगी है। प्रातः खाली पेट इस दूध को लेने के बाद दो घंटे तक कुछ न खायें पीएँ। (2) उपरोक्त बादाम का दूध तीन चार दिन पीने से आधे सिर के दर्द में आराम होता है। (3) बादाम को चंदन की तरह रगड़ने के समान बारीकतम पीसना या खूब चबाकर मलाई की तरह कोमल बनाकर सेवन करना आवश्यक है। इससे बादाम आसानी से हजम हो जाने पर पूरा लाभ मिलता है और कम बादाम से भी अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अन्य विधि- यदि उपरोक्त तरीके से बादाम का दूध लेना संभव न हो तो सात भिगोई हुई बादाम की गिरियाँ छीलकर (चार काली मिर्च के साथ पीसकर बारीक करके अथवा वैसे ही) एक-एक बादाम को नित्य प्रातः खूब चबा-चबाकर खा लें और ऊपर से गर्म दूध पी ले। स्मरण शक्ति की वृद्धि के साथ-साथ इससे आँखों के अनेक रोग जैसे- **आँखों की कमजोरी, आँखों से पानी गिरना, आँख आना** आदि दूर हो जाते हैं।

विकल्प- तीन ग्राम (एक चायवाला चम्मच भर) शंखपुष्पी का चूर्ण दूध या मिश्री की चासनी के साथ रोजाना प्रातः तीन-चार सप्ताह (विशेषकर गर्मियों में) तक लेने से स्मरण शक्ति बढ़ती है और मस्तिष्क की दुर्बलता दूर होती है तथा विश्लेषणात्मक बुद्धि बढ़ती है। हरी शंखपुष्पी (पचांग) १० ग्राम घोट-छानकर दूध मिलाकर ठंडाई की भांति भी ले सकते है।

वेद मलिक

7 मन्दाकिनी इन्क्लेव, अलकनन्दा, नई दिल्ली-110019

दूरभाष : 26274553

नाचना, गाना, खाना, पीना, पैसा, प्रसिद्धि आदि प्राप्त कर लेना .... जीवन इतना ही नहीं है।
जीवन तो इससे बहुत आगे ..... और बहुत कुछ है।